ग्रामीण जीवन की समस्याएँ
और गोदान

ग्रामीण जीवन की समस्याएँ और गोदान

डॉ. दिग्विजय नरायन

अमन प्रकाशन
कानपुर

☞ इस पुस्तक के सर्वाधिकार सुरक्षित हैं। लेखक एवं प्रकाशक की लिखित अनुमति के बिना इसके किसी भी अंश की फोटोकॉपी एवं रिकॉर्डिंग सहित इलेक्ट्रॉनिक अथवा मशीनी, किसी भी माध्यम से अथवा ज्ञान के संग्रहण एवं पुनर्प्रयोग की प्रणाली द्वारा, किसी भी रूप में, पुनरुत्पादित अथवा संचार प्रसारित नहीं किया जा सकता।

पुस्तक	:	ग्रामीण जीवन की समस्याएँ और गोदान
लेखक	:	डॉ. दिग्विजय नरायन
आई.एस.बी.एन.	:	978
संस्करण	:	प्रथम, सन् 2025
©	:	लेखक
मूल्य	:	350.00 मात्र
प्रकाशक	:	अमन प्रकाशन 104-ए /80 सी, रामबाग, कानपुर-208 012 (उ.प्र.) मो. 9044344050, 8960421760 फोन 0512-3590496 (ऑफिस)
शब्द सज्जा	:	अमन ग्राफिक्स, रामबाग, कानपुर
मुद्रक	:	आर. बी. ऑफसेट प्रिंटर्स, कल्यानपुर, कानपुर

Gramin Jivan Ki Samasyen aur Godan

Written by **: Dr. Digjijay Narain**

Price : Rs. ……………..

भूमिका

भारतीय गाँव और कृषि का अटूट रिश्ता है। वर्तमान समय में भी भारतीय जनसंख्या का 65 प्रतिशत व्यक्ति आजीविका के लिए कृषि पर ही निर्भर है। प्रेमचन्द ने 'गोदान' में ग्रामीण जीवन को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करने के लिए उसके सभी पक्षों का स्पष्ट ब्योरेवार तथा विशिष्टीकृत वर्णन किया है। तत्कालीन ग्रामीण जीवन के यथार्थ को रूपायित करने के लिए प्रेमचन्द ने उसके परिवेश को हूबहू प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। किसानों के घर द्वार खेत खलिहान और गाँव के प्राकृतिक दृश्यों का इतना जीवन्त वर्णन शायद ही कहीं मिले। ग्रामीण जीवन की संस्कृति परम्परावादी है। परम्परावादिता का एक रूप हमें ग्रामीणों की मिथ्या मर्यादा भावना में दिखाई पड़ता है। यह उपन्यास गरीबी, कर्ज और सामाजिक शोषण के बीच सम्मान बनाये रखने के लिए उसके अथक प्रयास की कहानी है। उपन्यास में ग्रामीण जीवन की कठोर सच्चाइयों जैसे जमींदारों, साहूकारों और पुरोहितों द्वारा किया जाने वाला शोषण और शहर तथा गाँव के जीवन के बीच के अंतर को भी चित्रित किया गया हैं।

प्रेमचन्द ने गोदान में किसानों की आर्थिक विपन्नता का बहुत ही प्रमाणिक और मार्मिक चित्रण किया है। तत्कालीन कृषक समाज विदेशी सरकार जमींदार और महाजन के तिहरे शोषण चक्र में पिस रहा था। प्रेमचन्द ने शोषकों के प्रतिनिधि के रूप में लाला पटेश्वरी और दरोगा, राय साहब और दुलारी सहुआइन, मगरूशाह और पं. मातादीन को प्रस्तुत किया हैं बेलारी गाँव के समस्त किसान जिनके दुर्भाग्य की कहानी प्रेमचन्द ने कही है।

'गोदान' प्रेमचन्द का अन्तिम पूर्ण उपन्यास है। स्वभावतः उसमें प्रेमचन्द का यथार्थवाद सम्बन्धी अन्तिम दृष्टि कोण प्रकट हुआ है। 'गोदान' का मुख्य या केन्द्रीय विषय है जमीदारों, महाजनों और सरकारी आमलों कि शोषण के फलस्वरूप दयनीय जिन्दगी जीने वाला भारतीय किसान जिसका प्रतिनिधित्व होरी और उसका परिवार करता है। ग्रामीण जीवन का ऐसा यथार्थवादी और विशद् चित्रण शायद ही

किसी भारतीय उपन्यास में मिले, हिन्दी की तो बात ही अलग है। 'गोदान' भारतीय कृषक जीवन की आँसू भरी कहानी एवं विषाद् गीत है। ग्रामीण जीवन का शायद ही कोई पहलू हो जिस पर उपन्यासकार ने बेलारी के समस्त गरीब किसानों को जमींदार और महाजन और पुलिस के शोषण की चक्की में पिसते दिखाया है। फसल हो या न हो, जमींदार लगान वसूलेगा ही साथ ही साथ समय-समय पर किसी धार्मिक उत्सव के लिए 'सगुन' किसी बड़े पदाधिकारी की दावत के लिए चंदा बेगार आदि भी किसानों को देना है। जमीन की बेदखली के डर से किसान महाजन से कर्ज लेता हैं। महाजन इतनी कड़ी सूद पर कर्ज देता है कि एक बार जो किसान कर्ज के दलदल में फंसता है। वह आजीवन उससे मुक्त नही हो पाता। पुरोहित भी धर्म, ईश्वर और परलोक का भय दिखाकर किसानों को लूटता है। समय समय पर पुलिस कर्मचारी और सरकारी अमले भी किसानों का शोषण करने से बाज नहीं आते। यह भारतीय किसान प्रेमचन्द के जमाने में दुर्दान्त शोषण चक्र का शिकार था, जिसका चित्रण गोदान में किया गया है। इस तरह ग्रामीण जीवन की समस्याएँ और गोदान शीर्षक से प्रकाशित यह पुस्तक निम्न अध्यायों में विभक्त है-

1- प्रेमचन्द युगीन ग्रामीण जीवन की समस्याएँ और गोदान, 2- किसान समस्या और गोदान, 3- गोदान के पात्रों का जीवन संघर्ष 4- ग्रामीण जीवन का सांस्कृतिक परिपार्श्व और गोदान, 5- उपसंहार। इस तरह अध्यायों के क्रम निर्धारण का उद्देश्य वर्तमान परिस्थितियों को देखते हुए ग्रामीण जीवन को परिभाषित करने का एक प्रयास है।

वस्तुतः मेरा यह अध्ययन एकदम नया नहीं कहा जा सकता परन्तु नवीन तथ्यों की खोज और नवीन मूल्यों की स्थापना में एक नया प्रयास अवश्य है। अब यह पुस्तक कैसी बनी है, यह तो सुधीजन ही बतायेंगे। लेकिन यह बात अधूरी रह जायेगी यदि मैं अपने भाई श्री उदय नारायण, श्री अजय नारायण, नग नारायण और तेज नारायण के साथ अपनी धर्म पत्नी नीलम नारायण, पुत्र ऋषभ नारायण पुत्री जाह्नवी नारायण और छोटे पुत्र कुनाल नारायण को याद न करूँ।

-डॉ. दिग्विजय नरायन

अनुक्रम

1.	प्रेमचन्द युगीन ग्रामीण जीवन की समस्याएँ और गोदान	09
2.	किसान समस्या और गोदान	28
3.	गोदान के पात्रों का जीवन संघर्ष	39
4.	ग्रामीण जीवन का सांस्कृतिक परिपार्श्व और गोदान	56
5.	उपसंहार	68

प्रेमचन्द युगीन ग्रामीण जीवन की समस्याएँ और गोदान

'गोदान' ग्राम जीवन और संस्कृति को उसकी सम्पूर्णता में प्रस्तुत करने वाला अद्वितीय उपन्यास है। यह सही है कि इसमें एक काल विशेष के ग्रामीण समाज का चित्र प्रस्तुत है, जो आजादी के बाद निरन्तर बदल रहा है, पर अपनी यथार्थता, व्यापकता और संवेदनात्मक गहराई में यह चित्रण निश्चित ही बेजोड़ है। ग्रामीण जीवन, संस्कृति और समस्याओं के अंकन की दृष्टि से इस उपन्यास का वही महत्व है जो मध्यकाल के युग जीवन की दृष्टि से महाकाव्यों का हुआ करता था।

भारतीय गाँव और कृषि का अटूट रिश्ता है। आज भी भारतीय जनसंख्या का 65 प्रतिशत अंश आजीविका के लिए कृषि पर निर्भर है और यह स्थिति सैकड़ों वर्षों से, भारत में अंग्रेजों का शासन स्थापित होने के बाद से तो जरूर ही चली आ रही है। अतः भारत में न केवल ग्रामीण जीवन कृषि से अभिन्न रूप से सम्बद्ध हो गया है। वरन् एक कृषि संस्कृति का निर्माण भी हो गया है, जिसके अपने मूल्य विश्वास, आस्थाएँ तथा जीवन पद्धति है। प्रेमचन्द ने 'गोदान' में ग्रामीण जीवन को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करने के लिए उसके सभी पक्षों का स्पष्ट, व्योरेवार तथा विशिष्टीकृत वर्णन किया है। यद्यपि आज भी गाँवों का जीवन, संस्कृति और समस्याएँ बहुत नहीं बदली है फिर भी स्वतत्रता प्राप्ति के बाद गाँवों के जीवन में काफी बदलाव आ गया है। अब जमींदारी प्रथा का उन्मूलन हो चुका है, लगभग सभी गाँवों में बिजली जा चुकी है, लगभग सभी गाँव शहरों से पक्की सड़कों से जुड़ गये हैं, शिक्षित युवकों की संख्या में वृद्धि हो गयी है, सूद पर रुपये लगाने के सम्बन्ध में कानून बन चुके हैं, और सरकार ने एक हद तक किसानों को कर्ज देने की व्यवस्था कर दी है। ग्रामीणों की मूल्य, विश्वास, राजनीतिक विचार तथा सोचने समझने के ढंग से भी क्रांतिकारी परिवर्तन हो रहे हैं। प्रेमचंद ने गोदान में ग्रामीण जीवन को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करने के लिए उसके सभी पक्षों का स्पष्ट व्योरेवार तथा विशिष्टीकृत वर्णन किया है।

क - सामाजिक समस्याएँ

ख - आर्थिक समस्याएँ

ग - राजनैतिक समस्याएँ

क -सामाजिक समस्याएँ :

प्रेमचन्द ने 1914 से लेखन प्रारम्भ किया। 1916 में उनका प्रसिद्ध उपन्यास 'सेवासदन' सामने आया तब से वे नियमित रूप से हिन्दी में लिखते रहे इसी बीच उन्होने लगभग एक दर्जन उपन्यास हिन्दी को दिये, उनका अन्तिम पूर्ण उपन्यास 1936 में 'गोदान' प्रकाशित हुआ। उनकी सक्रियता का 22 वर्षीय यह काल खण्ड भारतीय राजनीति और समाज की दृष्टि से भी बहुत सक्रिय रहा। यह गाँधी जी के वर्चस्व स्वतंत्रता संघर्ष का काल था ब्रिटिश साम्राज्य 1857 के विद्रोह के उपरान्त सबसे बड़ी चुनौती बनने वाला 1920-21 का असहयोग आन्दोलन, 1914 में विश्व युद्ध का प्रारम्भ, 1925 में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की स्थापना, 1930 में सविनय अवज्ञा आन्दोलन का प्रारम्भ और नमक आन्दोलन जैसे छोटे किन्तु श्रेष्ठ आन्दोलनों का जन्म, 1930 में लन्दन में गोलमेज़ कान्फ्रेन्स का आयोजन 1932 में कांग्रेस के नेतृत्व में सविनय अवज्ञा आन्दोलन का प्रारम्भ हुआ। प्रेमचन्द गाँधी जी के विचारों से पूर्णतया प्रभावित थे। फलस्वरूप प्रेमचन्द के काल में भारतीय समाज में जन जागृति थी। प्रेमचन्द नयी समाज व्यवस्था के लिए क्रान्ति की अपेक्षा सामाजिक विकास के पक्ष को उचित समझते थे।

डॉ० इन्द्रनाथ मदान को लिखे एक पत्र में उन्होने लिखा था हमारा उद्देश्य जनमत तैयार करना है इसलिए मै सामाजिक विकास में विश्वास रखता हूँ अच्छे तरीकों के असफल होने पर ही क्रान्ति होती है। मेरा आदर्श है प्रत्येक को समान अवसर प्राप्त होना इस सोपान तक बिना विकास के कैसे पहुँचा जा सकता है। इसका निर्णय लोगों के आचरण पर निर्भर करता है तब तक हम व्यक्तिगत रूप से उन्नत नहीं है जब तक कोई भी सामाजिक व्यवस्था आगे नहीं बढ़ सकती। प्रेमचन्द के युग के ग्रामीण समाज में या कहे कि गोदान में चित्रित ग्रामीण समाज में अज्ञानता थी, अशिक्षा थी, अन्धविश्वास था, शोषण था, परिवारों का विघटन था, कलह थी, सामाजिक दायित्व का अभाव था, छुआछुत और गरीबी थी। गोदान में प्रेमचन्द पारिवारिक समस्याओं का चित्रण बहुत मार्मिक ढ़ंग से किया है। "होरी के भाई शोभा और हीरा उससे अलग हो जाते है जबकि होरी उन्हें अपने बेटों की तरह पाला-पोसा था, परन्तु जब होरी के घर ऋण की गाय आती है तो सारा गाँव उस गाय को देखने आता है अगर नहीं आये तो हीरा और शोभा जो अपने सगे भाई थे।

होरी यह चाहता है कि वह दोनों आकर देख लेते और प्रसन्न हो जाते तो हमारी सारी मनोकामना पूर्ण हो जाती सांझ हो गयी दोनों सुर लेकर लौट आये इसी द्वार से निकले पर पूछा कुछ नहीं यही नहीं हीरा रात में गाय को जहर दे देता और गाय मर जाती है, और हीरा गाँव छोड़कर चला जाता है। इसके बावजूद होरी चाहता है कि हीरा की घर की तलाशी न हो, इसके लिए वह दरोगा को रिश्वत देने के लिए तैयार हो जाता है। धनिया की सतर्कता और तेजस्विता उसे कर्ज लेकर रिश्वत देने की दुदर्शा से बचा लेती है ।"[1] प्रेमचन्द युगीन ग्रामीण समस्याओं को अनेक सोपानों के माध्यम से दर्शाया जा सकता है ।

विवाह और दहेज :

गोदान में पारिवारिक विघटन की समस्या गोबर के पलायन से जुड़ी है। होरी, गोबर और अपनी दो लड़कियों की शादी धन के अभाव के कारण सही समय पर नहीं कर पाता और खुद ही कहता है। "अब लड़के की सगाई में देर न करनी चाहिए। सत्रहवाँ लग गया मगर कैसे करे कहीं पैसे के भी दरसन हो। जब से तीनों भाइयों में अलगौझा हो गया, घर की साख जाती रही। महतो लड़का देखने आते है पर घर की दशा देखकर मुँह फीका करके चले जाते है। दो एक राजी भी हुए तो रूपए माँगते है। दो-तीन सौ लड़की का दाम चुकाए और इतना ही ऊपर से खर्च करे, तब जाकर ब्याह हो। कहाँ से आवेगे इतने रूपये ? रास खलिहान में तुल जाती है। खाने भर को भी नहीं बचता। ब्याह कहाँ से हो और अब तो सोना ब्याहने योग्य हो गयी। लड़के का ब्याह न हुआ न सही, लड़की का ब्याह न हुआ तो सारी बिरादरी में हंसी होगी। पहले तो उसी की सगाई करनी है, पीछे देखी जायेगी ।"[2]

इस आर्थिक विपन्नता के कारण ही गोबर झुनिया से विवाह कर लेता और रातो-रात शहर भाग जाता है। और शहर जाकर गोबर जीविका से जुड़ जाता है। वह चतुराई और परिश्रम से अच्छा धन कमाने लगता है। पारिवारिक विघटन की एक समस्या भोला के परिवार में दिखायी गयी है। भोला वद्धावस्था में नोहरी से विवाह कर लेता है। भोला की पुत्र बधु कामता की पत्नी सौतेली सास का नियंत्रण नहीं मानती और अलगाव का नौबत आ जाती है। कामता भोला की पिटाई करता है। और उसे घर से बाहर निकाल देता है। मजबूरन उसे तीन रूपया महीना और शेर भर जौ रोजाना पर नौकरी करनी पड़ती है। उसकी युवा पत्नी नोहरी नोखेराम से सम्बन्ध बना लेती है और भोला को विष का घूँट पीकर उसी के साथ रहना पड़ता है ।

होरी प्रतिदिन राय साहब के यहां जाना जरूरी समझता है और गोबर उसे चापलूसी समझता है होरी समझता है राय साहब धर्मात्मा है। वह राय साहब की इस बातों को समझता है कि उन्हें हजारो चिन्ताएं है। गोबर भाग्यवाद का प्रबल विरोधी है। वह कहता है कि रायसाहब को सचमुच जमींदारी से उलझन हो रही है तो "फिर अपना इलाका हमें क्यों नहीं दे देते! हम अपने खेत, बैल, हल, कुदाल सब उन्हें देने को तैयार है। करेगें बदला यह सब धूर्तता है, निरी मोटमरदी जिसे दुखः होता है, वह दरजनों मोटरे नहीं रखता, महलों में नहीं रहता, हलवा-पूरी नहीं खाता और न नाच रंग में लिप्त रहता है। मजे से राज का सुख भोग रहे है, उस पर दुखी है ।"[3]

2 - जातिवाद और वर्ग भेद :

प्रेमचन्द के युग में जातिवाद भारतीय समाज में अपनी जड़े जमाये हुए था। प्रेमचन्द ने अपनी अनेक कहानियों और एकाधिक उपन्यासों में इस समस्या को उठाया है। गोदान में तो यह समस्या विकराल रूप धारण कर गयी है गोदान से पूर्व की कहानियों में भी यह समस्या थी। पंडित दातादीन का पुत्र मातादीन सिलिया चमारिन से प्रेम करता है। वह रात-दिन खट कर उसके खेत खलिहान में काम करती है परन्तु अधिकार के नाम पर उसे दो पैसे का उधार चुकाने के लिए सहुआईन को अनाज देने की भी आज्ञा नहीं है। इस घृणित मनोवृत्ति के कारण सिलिया के माता-पिता और अन्य चमार विद्रोह का स्वर उठाते है वे मातादीन को घेर लेते है और जब "झिगुरी सिंह सिलिया के बाप हरखू से पूछते है कि चौधरी किस बात का झगड़ा है तब सिलिया का बाप हरखू उत्तर देता है झगड़ा कुछ नहीं सरकार हम आज या तो मातादीन को चमार बना देगें या उनका और अपना रक्त एक कर देगें। सिलिया कन्याजात है किसी न किसी के घर जायेगी ही इस पर हमें कुछ नहीं कहना परन्तु उसे जो कोई भी रखे हमारा होकर रहे। तुम हमें ब्राहम्ण नहीं बना सकते मुदा हम तुन्हें बिरादरी बनाने को तैयार है। जब यह समस्या नहीं है तो फिर तुम भी चमार बन जाओ हमारे साथ आओ हमारे साथ उठो-बैठो हमारी इज्जत लेते हो तो अपना धरम हमें दो ।"[4]

3 **ग्रामीण नारी की समस्याएँ :**

प्रेमचन्द का लेखन सन् 1914 ई0 से शुरू हुआ और 1936 तक अबाध गति से चलता रहा। यह समय भारतीय समाज में स्त्रियों और दलितों के लिए दोहरी गुलामी का समय था। निराला ने ठीक ही लिखा था कि हमारे समाज में स्त्रियाँ दासों

की दासियाँ है। यह वह समय था, जिसमें स्त्रियाँ एक साथ उपनिवेशवाद और सामन्तवाद की चक्की में पिस रही थी। यह राजनीतिक और सामाजिक दासता का कारूणिक इतिहास है। दुनिया भर के इतिहास में यह खोजना मुश्किल नहीं है कि जो भी समाज गुलाम रहा है, उसकी स्त्रियों ने सर्वाधिक दंश झेला। कश्मीर में हिन्दू स्त्रियों के साथ और गुजरात में मुस्लिम स्त्रियों के साथ हुए दुराचार में इस मानसिकता का ही हाथ है ।

जिस प्रकार हमें अपनी आजादी और अपने सुख की चिन्ता है, उसी प्रकार हमें स्त्रियों की भी चिन्ता करनी होगी। उन्हें इस स्थिति में पहुँचाना होगा कि वे स्वयं अपनी चिंता कर सके। इसके लिए प्रेमचन्द स्त्री की शिक्षा बहुत जरूरी मानते थे। दहेज के प्रसंग में लिखते हुए अपने एक लेख में उन्होनें लिखा कि—"हमें तो इसका एक ही इलाज नजर आता है और वह यह कि लड़कियों को अच्छी शिक्षा दी जाय और उन्हें संसार में अपना रास्ता आप बनाने के लिए छोड़ दिया जाय उसी तरह जैसे हम अपने लड़के को छोड़ देते है। उनको विवाहित देखने का मोह हमें छोड़ देना चाहिए और जैसे युवकों के विषय में उनके पदभ्रष्ट हो जाने की परवाह नहीं करते, उसी प्रकार हमें लड़कियों पर भी विश्वास करना चाहिए।"[5]

यहाँ दो बातें बिलकुल साफ है—एक तो दहेज जैसी अमानवीय प्रथा से उत्पन्न क्षोभ और उसको सदा के लिए समाप्त करने का संकल्प मार्ग, और दूसरा सदियों से पुरूष स्त्री को सिर्फ घर के भीतर रहने वाली चीज के रूप में देखते और उनकी शारीरिक कमजोरी का बहाना करते रहे है। पुरूष को सदा से लगता रहा है कि "स्त्री अबला है। वह कोमलांगी होती है। बाहर का संसार उसके लिए ठीक नहीं होता है।"[6] कहने का मतलब यह है कि लम्बे समय से स्त्री के मन और तन की कोमलता को पुरूष ने अपने एकाधिकार के लिए हथियार के रूप में इस्तेमाल किया है। उसे बराबर डर लगता रहा है कि उसके सम्राज्य को स्त्रियाँ जीत न लें और इसके लिए उसे स्त्रियों का बाहर की दुनिया में प्रवेश निषिद्ध कर देना सबसे उचित जान पड़ता है। जब चाहा जहाँ चाहा, जिस खूंटे में चाहा, लड़की को बाँध दिया। लड़की को 'उफ' तक कहने का सामाजिक अधिकार नहीं । प्रेमचन्द अच्छी तरह जानते है कि स्त्री और पुरूष का भेद प्राकृतिक से अधिक सांस्कृतिक है। दुनिया में पुरूष को कहने और करने दोनो का अधिकार प्राप्त है। स्त्रियों को ही बन्दीजन की तरह रहना पड़ता है ।

प्रेमचन्द स्त्रियों को इस बन्दीगृह से बाहर करने और खुले आसमान के नीचे उन्हें उन्हीं की शर्तो पर स्वच्छन्द विचरण करने की वकालत करते है। वे अच्छी तरह जानते थे कि उनके समय में या आगे आने वाले समय में मनुष्यता का यही तकाजा है। उन्होनें अपने कालजयी उपन्यास 'गोदान' में सरोज के मुँह से कहलवाया है "हम पुरूषों से सलाह नहीं माँगती। अगर वह अपने बारे में स्वतंत्र है, तो स्त्रियाँ भी अपने बारे में स्वतंत्र है। युवतियाँ अब विवाह का पेशा नहीं करना चाहती। वह केवल प्रेम के आधार पर विवाह करेंगी।"[7] यह कथन इस बात को स्पष्ट करता है कि यह चेतना शिक्षा और अपने अधिकारों के प्रति सचेत होने से ही आई है।

गोदान की झुनिया अपने प्रेम की शुरूआत में कहती है। "मर्द दूसरी औरतों के पीछे दौड़ेगा तो औरत भी जरूर मर्दों के पीछे दौड़ेगी। मर्द का हरजाईपन औरत को भी उतना ही बुरा लगता है, जितना औरत का मर्द को। यही समझ लो। मैनें तो अपने आदमी से साफ-साफ कह दिया था, अगर तुम इधर-उधर लपके, तो मेरी भी जो इच्छा होगी, वह करूँगी। यह चाहो कि तुम तो अपने मन की करो और औरत को मार के डर से अपने काबू में रखो, तो यह न होगा। तुम खुले- खजाने करते हो, वह छिपकर करेगी। तुम उसे जलाकर सुखी नहीं रह सकते।"[8]

4. विधवा समस्या :

प्रेमचन्द युग में विधवाओं की बड़ी दयनीय दशा थी। एक तो स्त्री, ऊपर से विधवा भी बेचारी ऐसी स्त्री पर दुःख का पहाड़ टुट पड़ता था। अपने को सभ्य कहने वाले लोग अपने व्यंग्य से उस दुःखी स्त्री का हृदय छलनी कर देते है । बहुत कुछ बदलने के बाद भी, आज भी यह समाज विधवाओं, खासकर युवावस्था में हुई विधवाओं के प्रति सहानुभूति तो रखता है, लेकिन सहानुभूति का व्यवहार नहीं करता। अमृत राय ने लिखा है-"अन्याय का नाम लेते ही उनका ध्यान सबसे पहले स्त्री जाति पर जाता है। सबसे ज्यादा जुल्म का शिकार कौन है। कहने के लिए औरत मर्द के बराबर है। सब ढकोसला है। औरत मर्द के पैर की जुती है।"[9] स्त्री के विषय में अपने समय में ऐसी बेजोड़ समझ रखने वाले प्रेमचन्द ने जुलाई 1933 में एक टिप्पणी लिखी -'अभागिन विधवा' इस टिप्पणी वाली विधवा अपना प्राण देने को कह रही है। "मै बाल विधवा हूँ। मै जिन्दगी से तंग आ चुकी हूँ। इस दुनिया में नहीं रहना चाहती। तुम लोग मुझे क्यों तंग करते हो, मुझे मर जाने दो। "[10]

प्रेमचन्द विधवाओं के प्रति अपनी समझ और सहृदयता का परिचय देते हुए ही अपनी कहानियों और उपन्यासों में विधवा-जीवन का मार्मिक चित्रण करते है, ताकि समाज की इस हृदयहीनता से घृणा की जा सके। 'वरदान' नामक उपन्यास में वृजरानी का पति मर जाता है। पति की मृत्यु के कुछ समय बाद ही उसके श्वसुर को कोई मार डालता है। उसकी सास इन दोनों की मृत्यु को वृजरानी से जोड़ती है। उसका मानना है कि इसके चरण शुभ नहीं है। वह कहती है—"तुम्हारे चिकने रूप ने मुझे ठग लिया। मै क्या जानती थी तुम्हारे चरण ऐसे अशुभ है।"[11] आज भी ऐसी अवस्था में युवा-विधवाओं को ऐसे व्यंग्य बाण सहने पड़ते है। एक तो प्रिय गया और उस पर से समाज का उलाहना। प्रेमचन्द भारतीय समाज की इन मनोवृत्ति को खुब गहराई तक समझते थे। गबन में सरला रतन के साथ भी कुछ ऐसा ही घटित होता है। पति के मरते ही भतीजा मणिभूषण सारी सम्पत्ति पर कब्जा कर लेता है। वह सरला रतन से कहता है— "सम्मिलित परिवार में विधवा का अपने पुरूष की सम्पत्ति पर कोई अधिकार नहीं होता अगर चाचा जी अपनी सम्पत्ति आप को देना चाहते, तो कोई वसीयत अवश्य लिख जाते। आज आप को बंगला खाली करना होगा। मोटर और अन्य वस्तुएं निलाम कर दी जाएँगी। आपकी इच्छा हो, मेरे साथ चले और यहाँ रहे। यहाँ रहने के लिए आपको दस-ग्यारह रूपये का मकान काफी होगा। गुजारे के लिए पचास रूपये का प्रबन्ध मैने कर दिया है ।"[12] पति के मरते ही पत्नी को यह समाज दो कौड़ी का बना देता है । विधवाओं के विषय में इस समाज की एक और सच्चाई सामने आती है जिन्हें समाज अछूत या निम्न श्रेणी का मानता है, उनके वहाँ विधवाओं की स्थिति सवर्ण 'स्वामिनी' शीर्षक कहानी में चित्रित किया है कि रामप्यारी का ससुर अपने बेटे की मृत्यु के बाद अपनी पतोहू रामप्यारी के दुःख को शिद्दत से महसूस करता है और उसे घर की मालकिन बना देता है। यद्यपि वह नहीं चाहती है फिर भी। वह सोचता है, इसी बहाने उसका दुःख अगर कम नहीं होगा तो बढ़ेगा भी नहीं इसी प्रकार 'आधार' शीर्षक कहानी में नायिका अनूपा पति की मृत्यु के बाद ससुराल में प्रेम और स्नेह पाने के लिए अन्यत्र शादी करने से इन्कार कर देती है। यहाँ ससुराल का अच्छा व्यवहार महत्वपूर्ण है। उसका अन्यत्र विवाह न करना एक दूसरा प्रश्न है। हमारे समाज में प्रेमचन्द युग से लेकर तमाम घरों में आज तक विधवा को किसी शुभ-कार्य में सम्मिलित नहीं होने दिया जाता है। उसकी छाया से सुहागिने बचना चाहती है। उनके आचरण से लगता है, जैसे विधवा उनका

सौभाग्य खा जाएँगी । 'धिक्कार' शीर्षक कहानी में नायिका मानी, जो कि बाल विधवा है, अपनी चचेरी बहन को उसके विवाह के दिन दुल्हन के रूप में देखने के लिए प्रेम और उत्सुकता से उसके कमरे में पहुँचती है। उसके पहुँचते ही उसकी चाची का पारा चढ़ जाता है। वे कहती है— "तुझे यहाँ किसने बुलाया था, निकल जा यहाँ से।" मानी पर इसका घातक प्रभाव पड़ता है। सोलह-सत्रह वर्ष की वह लड़की, जिसके हँसने खेलने के दिन थे, विधवा बन कर धिक्कार और अपमान सहती है। प्रेमचन्द इस समाज के खोखलेपन को उजागर कर रहे थे। वे चित्रित कर रहे थे कि यह समाज कितना अपराधी है जो एक ओर बाल विवाह करता है और दूसरी ओर विधवा हो जाने पर उसका जीना दूभर कर देता है।

संभवतः यही कारण है कि प्रेमचन्द विधवाओं के विषय में भारतीय समाज की समीक्षा करने के लिए हिन्दू समाज को खरी-खोटी सुना कर रास्ते पर लाने की कोशिश करते रहे ।

5. **वेश्या समस्या :**

भारतीय समाज में स्त्री की जो स्थिति रही है, वेश्या-समस्या उससे गहरी जुड़ी है। सभ्यता के लगभग आरम्भिक दौर से किसी न किसी रूप में वेश्याओं की उपस्थिति भारतीय समाज में है। पुरूष वर्चस्व वाले इस समाज में स्त्री को सदा ही भोग की वस्तु समझा गया। आज भी ऐसे महानुभावों की कमी नहीं है, जो स्त्री को इसी रूप में देखते है। वेश्या ऐसी ही दृष्टि के चरम का परिणाम है। वे कभी नगर वधू के रूप में आयी, कभी देवदासियों के रूप में जिसके पास जीने के लिए यह समाज कोई और मार्ग नहीं छोड़ता प्रेमचन्द स्त्री की इस शोचनीय दशा पर गम्भीरता से विचार करते है। अपने एक लेख में वे इसका कारण आर्थिक बताते है। उन्होंने लिखा है कि—"इस तरह की बुराईयों का मुख्य कारण आर्थिक कष्ट ही है। बेकारी दिनों-दिन बढ़ती जाती है। मजूरो की मजूरी नहीं लगती, किसान तबाह हुए जाते है, पढ़े-लिखे आदमी भूखे मर रहे है, व्यापारियों का दिवाला निकला जा रहा है। फिर ऐसी वारदातें क्यों न हो और क्यों न चकले आबाद हो।"[13] अपने एक अन्य लेख 'रूस का नैतिक उत्थान' में भी वे इसका मूल कारण आर्थिक कष्ट है, जो बाद में मानसिक दुर्बलता का रूप धारण कर लेता है। यहाँ धन थोड़े से आदमियों के हाथ में है, वहाँ लाजमी है कि धनवान लोग अपनी विलासिता को तृप्त करने के लिए प्रलोभनों से काम लें। उसी से बिमारियाँ भी फैलती है। प्रेमचन्द इस विषय पर लेख

लिखने के साथ ही अपने विस्तृत कथा-साहित्य में भी इस मुद्दे पर भी संवेदनशीलता से विचार करते है।

'वेश्या' नामक कहानी में प्रेमचन्द इस पेशे के लिए पुरूषों को जिम्मेदार ठहराते हुए मानते है कि इसकी शुरूआत पुरूषों ने ही की होगी। किसी भी समाज को पतन की ओर ले जाने के लिए यह पर्याप्त है कि उस समाज में स्त्री पुरूष की काम तृप्ति के लिए वेश्या बन जाए। 'वेश्या' की नायिका माधुरी कहती है "नारी अपना बस रहते हुए कभी पैसों के लिए अपने को समर्पित नहीं करती है। यदि वह ऐसा कर रही है तो समझ लो कि उसके लिए और कोई आश्रय और कोई आधार नहीं है।"[14] यहाँ एक सामाजिक तथ्य का उद्घाटन होता है। नारी महज पैसे के लिए इस व्यापार में नहीं आ सकती। मूल कारण हो जाता है उसका समाज में आधारहीन हो जाना । आधारहीनता और पुरूष वर्ग का कामोदीप्त निगाहें जीविकोपार्जन के लिए उन्हें इस पेशे में ला पटकती है। तथापि पूंजीवाद ने प्रेमचन्द के इस मूल वक्तव्य को ही सही ठहराया है कि आर्थिक कारण इस पेशे के लिए सबसे बड़ा कारण है। अगर ऐसा नहीं होता तो सोवियत संघ के विघटन के बाद स्त्री मुक्ति के महान् योद्धा लेनिन की मूर्ति के सामने उन्हीं के देश की युवतियाँ 'प्लेब्याय' जैसी बदनाम पत्रिकाओं के लिए 'नग्न माडलिंग' नहीं करती। महज 'डालरों' के लिए 'मुक्ति संग्राम' के प्रातः स्मरणीय देश की युवतियाँ कालगर्ल न बन जाती।

वेश्या की माधुरी सामन्ती समाज में वेश्या होने के एक कारण की ओर संकेत करती है। प्रेमचन्द तक आते-आते भारतीय समाज में बदलाव आने लगा था। पूँजीवाद ने यहाँ पर पैर पसारना शुरू कर दिया था। इसीलिए प्रेमचन्द दूरदृष्टि का परिचय देते हुए वेश्या समस्या का मूल कारण आर्थिक बताते है।

'सेवासदन' में प्रेमचन्द ने इस समस्या से सम्बन्धित मुद्दों का खुलासा किया है। सुमन विट्ठलदास से कहती है—"मै जानती हूँ कि मैनें अत्यन्त निकृष्ट कार्य किया है। लेकिन मै विवश थी, इसके सिवा मेरे लिए और कोई रास्ता न था। मैने चाहा कि कपड़े सीकर अपना निर्वाह करूँ, पर दुष्टों ने मुझे ऐसा तंग किया कि अन्त में मुझे इस कुएँ में कूदना पड़ा।"[15] आखिर ये दुष्ट हैं कौन? प्रेमचन्द इसका उत्तर देते हुए अनिरुद्ध सिंह से कहलवाते है—"हमें वेश्याओं को पतित समझने का कोई अधिकार नहीं है। हम रात-दिन जो रिश्वते लेते हैं, सूद खाते है, दीनो का रक्त चूसते है, असहायों का गला काटते है, कदापि इस योग्य नहीं है कि समाज के किसी अंग को

नीच या तुच्छ समझें। सबसे नीच हम हैं सबसे पापी, दुराचारी, अन्यायी हम है जो अपने को शिक्षित, सभ्य, उदार और सच्चा समझते है। हमारे शिक्षित भाइयों की ही बदौलत दाल-मंडी आबाद है। चौक में चहल-पहल है, चकलों में रौनक है। यह मीना बाजार हम लोगों ने ही सजाया है ये चिड़ियाँ हम लोगों ने ही फांसी है। जिस समाज में अत्याचारी जमींदार, रिश्वती राज्य कर्मचारी, अन्यायी महाजन, स्वार्थी बन्धु, आदर और सम्मान के पात्र हो, वहाँ दालमंडी क्यों न आबाद हो। जिस दिन नजराना, रिश्वत, सूद-दर-सूद का अन्त होगा, उसी दिन दालमंडी उजड़ जायेगी, ये चिड़ियाँ उड़ जाएँगी ।"[16] यह है वेश्या - समस्या पर प्रेमचन्द की दृष्टि और उनका अथाह दुःख। डॉ० परमानन्द श्रीवास्तव ने ठीक लिखा है कि " प्रेमचन्द के लिए नारी मुक्ति की समस्या आर्थिक-सामाजिक मुक्ति की समस्या है।"[17] 'गोदान' में प्रेमचन्द का यह मन्तव्य मिर्जा साहब के कथन में अस्तित्व पाता है। मिर्जा साहब कहते है — रूप के बाजार में स्त्रियाँ आती है, जिन्हें या तो अपने घर में किसी कारण से सम्मानपूर्ण आश्रय नहीं मिलता या तो आर्थिक कष्टों से मजबूर हो जाती है। मेहता उनके कथन का प्रतिवाद करते है तो मिर्जा साहब फिर कहते हैं—"मैं कहता हूँ कि यह महज रोजी का सवाल है। हाँ, यह सवाल सभी आदमियों के लिए एक सा नहीं है। मजदूर के लिए वह महज आटे-चावल और एक फूस की झोपड़ी का सवाल है। आदमी महज रोटी नहीं चाहता, और भी बहुत-सी चीजें चाहता है। अगर औरतों के सामने भी वह प्रश्न तरह-तरह की सूरतों में आता है, उनका क्या कसूर है।"[18] कहने की आवश्यकता है कि यहाँ भी मूल कारण आर्थिक-सामाजिक ही है।

प्रेमचन्द 'सेवासदन' में यह चित्रित करते हैं कि वेश्यावृत्ति और धार्मिक पाखण्ड में बहुत गहरा सम्बन्ध है। जिस ठाकुरद्वारे में पहले सुमन को घुसने नहीं दिया जाता है, वेश्या होने के बाद, वहाँ उसका गायन होता है। यही रूप हमारे भारतीय समाज का, भारतीय समाज कुरूप अन्तर्विरोधो से भरा हुआ है। सेवासदन में प्रेमचन्द ने समाज की बुराइयों को दूर करने तथा सुधारने का प्रयास किया है।

प्रेमचन्द ने अपनी कई अन्य कहानियों में भी वेश्या जीवन की समस्या को उठाते-हुए भारतीय समाज व्यवस्था की कड़ी आलोचना की है।

ख आर्थिक समस्याएँ :

प्रेमचन्द ने गोदान में किसानों की आर्थिक समस्या का बहुत ही प्रामाणिक और मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है। तत्कालीन कृषक समाज विदेशी सरकार,

जमीदार और महाजन के तिहरे शोषण चक्र में पिस रहा था। प्रेमचन्द ने शोषकों के प्रतिनिधि के रूप में लाला पटेश्वरी, दरोगा, रायसाहब, दुलारी सहुआइन मगरु साह और पं. मातादीन को प्रस्तुत किया है। बेलारी गाँव में समस्त किसान, जिनके दुर्भाग्य की कहानी प्रेमचन्द ने कही है, इन शोषकों के शोषण, दमन, अत्याचार की शिकार है। बेलारी के जिस परिवार को प्रेमचन्द ने अपने कथा संसार के केन्द्र में अवस्थित किया है, वह है होरी का परिवार ।

'गोदान' और आज के समय के बीच लगभग 90 साल का फर्क है। फिर भी 'गोदान' ताजा है इसका भारत अपेक्षाकृत अधिक वास्तविक है। इसकी तत्कालीन राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक स्थितियों को कई दृष्टियों से देखा परखा गया। इतिहासकार, पत्रकार, राजनीतिक और विचारक सबने अपने-अपने ढ़ंग से विश्वयुद्धोत्तर आर्थिक संकट की चपेट में आये हुए पराधीन भारतीय समाज को विश्लेषित किया है लेकिन 'गोदान' में यह समाज अधिक वास्तविकता से मूर्त हुआ, अपने आंतरिक अनुभवों के साथ फैला और अपनी जड़ों को ऐतिहासिक खोज की ओर बढ़ाया। कोई उपन्यासकार जब समकालीन सच्चाइयों की गहनता में निर्मम, सजग और संवेदनशील होकर प्रवेश करता है तो उसके काल का फलक व्यापक हो जाता है। वह अपने समय की धरती पर खड़े मनुष्यों की जड़ों तथा इतिहास की विकास इन दोनों को पहचानना चाहता है। प्रेमचन्द समाज की आत्मालोचन में निर्मम, विचारधारात्मक चुनौतियों के प्रति सजग और मनुष्य के जीवन के सन्दर्भ में संवेदनशील रहे। इसलिए वे समाज का ऐसा जीता-जागता यथार्थ उपस्थित कर सके, जिसका विकसित रूप 'गोदान' में मिलता है। 'गोदान' का भारत आज भी ताजा लगता है, तो यह इसलिए कि यह उपन्यास इतिहास का एक कलात्मक दस्तावेज है।

आदमी की रीढ़ तोड़ देने वाली अर्थव्यवस्था में मुख्य सवाल यह नहीं बन पाता कि मुक्ति किस प्रकार मिलेगी, बल्कि सबसे बड़ी तमन्ना यह रहती है कि—"खाली मोटा झोटा पहनना, मोटा झोटा खाना और मरजाद के साथ रहना'।[19] किस प्रकार सम्भव है। अन्ततः यह सच भी नहीं सधता। आर्थिक विपन्नता के कारण धनिया सोचती है—"यद्यपि अपने विवाहित जीवन के बीस बरसों में उसे अच्छी तरह अनुभव हो गया था कि चाहे एक-एक कौड़ी को दाँत से पकड़ो मगर लगान बेबाक होना मुश्किल है।"[20] यह दुरावस्था समुचे कृषक वर्ग की नियति थी, क्योंकि अंग्रेजों के शासनकाल में कृषि व्यवस्था अधिक शोषणमूलक बन गई थी।

आर्थिक समस्या के कारण धनिया के—" तीन लड़के बचपन ही में मर गए। उनका मन आज भी कहता था, अगर उनकी दवादारू होती तो वे बच जाते, पर वह एक धेले की दवा भी न मंगवा सकी थी। उसकी भी उम्र अभी क्या थी। छत्तीसवाँ ही साल तो था, पर सारे बाल पक गए थे, चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ गई थी। सारी देह ढ़ल गई थी, वह सुन्दर गेहुँआ रंग सँवला गया था, और आँखो से भी कम सूझने लगा था।"[21]

पहले जमीन की मिल्कियत (कर) कृषक वर्ग के हाथों में थी। राजा जमीन का वास्तविक मालिक नहीं था। वह सिर्फ पैदावार का एक हिस्सा कर के रूप में लेता था। पैदावार के घटने-बढ़ने के साथ यह हिस्सा भी घट-बढ़ जाता था। मुगल बादशाह यही कर मुद्राओं में लेते थे, लेकिन जमीन पर कृषकों का अधिकार कायम थी। ब्रिटिश शासकों ने अपने सामंती और पूँजीवादी स्वार्थो के अनुरूप भारतीय जमीन पर अपना एकाधिकार स्थापित किया। इसने जमीनदारी और रैयतदारी प्रथा विकसित की जिसका उद्देश्य करों की लूट से अपना सरकारी खर्च चलाना था। बहुतों को भरम है कि अंग्रेज भारत में सिर्फ पूँजीवाद लेकर आये। वस्तुस्थिति यह है कि उन्होनें भारतीय भूमि व्यवस्था में यूरोपीय सामंतवादी पद्धति लागू की और कृषकों का दोहरा शोषण किया। "बंगाल में मुगल शासन के अन्तिम वर्ष (1764-65) सिर्फ 8 लाख 18 हजार पैड मालगुजारी वसूल हुई थी जबकि ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने पहले वर्ष (1765-66) ही मालगुजारी बढ़ाकर 1 करोड़ 4 लाख 7 हजार पैंड कर दिया। ब्रिटिश शासन में यह रकम बढ़कर (1900-01) में 1 करोड़ 75 लाख पैड, 1911-12 में 2 करोड़ पैड और भयंकर आर्थिक मंदी, सूखा। किसानों की कमर पर यह आर्थिक बोझ उन परिस्थितियों में बढ़ाया गया, जिनमें वस्त्र, गुण जैसे ग्रामोद्योग और जातिगत पेशे तोड़ दिये गये थे, और खेती की सुविधाओं का विनाश होता गया था और अनाज की दर में गिरावट आ गयी थी।"[22]

होरी के जीवन में जो आर्थिक गिरावट आई और वह लगातार कर्ज के बोझ से दबता गया, उसकी पृष्ठभूमि में देश की उपरोक्त आर्थिक दशा थी। दिन भर काम करने के बावजूद उसके पास खाने के लिए अन्न और पहनने के लिए वस्त्र नहीं था। यह हालत तब थी, जब पूरा परिवार मिट्टी और पसीना एक कर रहा था होरी बैलों को हॉक रहा था और गोबर मोट ले रहा था। सोना और रूपा दोनों खेतों में पानी दौड़ा रही थी। होरी अपने खेत की पैदावार अच्छी करने के लिए अथवा घर

बनाने के लिए कर्ज नहीं लेता। अन्ततः होरी को आर्थिक समस्या में फँसना पड़ता है, लगान चुकाने, बैल खरीदने, फसल बोने अथवा पिछला सूद चुकाने के लिए। लगान और सूद की भुगतान के लिए उसकी ईख की खड़ी फसल बहुत कम कीमत में खरीद ली जाती है। फसल के समय बाजार की कीमत गिरा दी जाती थी, लेकिन उसी किसान को अपने पेट की भूख मिटाने के लिए बाजार से ऊँची कीमत में अपना ही उपजाया हुआ अन्न खरीदना पड़ता था। कृषि व्यवस्था के उपनिवेशवादी सामंती रूपांतरण के कारण ग्रामीण स्वनिर्भरता का विनाश हुआ। कृषि के ऐसे वाणिज्यीकरण की नींव पड़ी, जिसमें उत्पादनकर्त्ता कृषक का पक्ष सबसे कमजोर रहता था। शोषक महाजन वर्ग और सरकार का पक्ष सर्वाधिक मजबूत। यह कृषक वर्ग ग्रोमोद्योग के साथ वन सम्पत्ति से भी अलग कर दिया गया था। होरी के गाँव के पास कृषकों के लिए एक छोटी सी चरागाह भर बची थी—" पर ईश्वर भला करे रायसाहब का कि उन्होंने साफ कह दिया, यह जमीन जानवरों की चराई के लिए छोड़ दी गई है और किसी दाम पर भी न उठायी जाएगी। कोई स्वार्थी जमींदार होता, तो कहता, गाये जायँ भाड़ में, हमें रूपये मिलते है, क्यों छोड़े पर रायसाहब अभी तक पुरानी मर्यादा निभाते आते है। जो मालिक प्रजा को न पाले, वह भी कोई आदमी है। "[23]

होरी जिन नैतिक मूल्यों की हिफाजत करना चाहता था, स्वर्निभर ग्रामीण व्यवस्था के परम्परागत व्यवस्था में किसानों का आर्थिक शोषण होता था, पर इनके अपने कुछ सामाजिक अधिकार भी थे। जब सोलहवीं सदी के इंग्लैण्ड में हुए परिवर्तन की नकल पर 19 वी, 20 वी सदी के भारत में अर्थतन्त्र की एक दुनिया धुसपैठ कर रही थी, तो कृषक समाज की यह मध्यकालीन व्यवस्था चरमरा गई। परिस्थिति की विडम्बनाओ को भाँपते हुए भी होरी में नैतिक अन्तर्मुखता की वजह यह है कि वह कृषि जीवन के उन मूल्यों और संवेदना की हिफाजत करना चाहता था, जिसके बिना एक मानवीय समाज का जीवन अधूरा था।

प्रेमचन्द ने किसानों की भयंकर गरीबी का चित्र खीचने के लिए ऋण समस्या को अपने उपन्यास के केन्द्र में रखा। इस समस्या के भीतर गहराई मे जाने का अर्थ था ब्रिटिश सरकार की शासन व्यवस्था और महाजनी सभ्यता, इन दोनों की पोल एक साथ खोलना। किसानों पर बढ़ते कर्ज और उनकी दरिद्रता का सीधा सम्बन्ध शासन व्यवस्था के जनविरोधी चरित्र से था। बाढ़ या सूखा के कारण किसानों

की फसल मारी जाती, तब भी लगान देना पड़ता। इसके लिए महाजनों से कर्ज लेना पड़ता था। चीनी, किरासन तेल, नमक तथा दैनिक उपयोग की अन्य चीजों पर लगाये जाने वाले कर का भार अलग से बरदाश्त करना पड़ता है। कृषक जीवन का अकाल और भुखमरी से सदियों पुराना नाता है। होरी की मृत्यु भी स्वाभाविक कारणों से नही हुई। कागजों में मौत का कारण अकसर बुखार या लू लगना बताया जाता है, लेकिन भारत में जितने लोग मरते उनमे से तीन आदमी गरीबी की बीमारियों के कारण अप्राकृतिक ढंग से मरते है। इन तक इलाज नही पहुच पाता। लेकिन दातादीन जैसे पण्डित 'गोदान' कराने पहुँच जाते है। धार्मिक भावना किसानो के आर्थिक शोषण को कितना गहरा कर देती है और अपनी रूढ़िवादिता से ग्रस्त होकर कृषक किस प्रकार सामाजिक हत्या का शिकार होता है, होरी इसका बहुत अच्छा उदाहरण है। सूद की दर भयानक थी, फिर भी किसान उधार लेने के लिए अपनी जिन्दगी गिरवी रख देता था। पाँच साल हुए होरी ने दुलारी से तीस रूपये लिए थे, तीन साल में उनके सौ रूपये हो गए, तब स्टांप लिखा गया। दो साल में उस पर पचास रूपये सूद चढ गया था। मंगरू साह के मूल पचास रूपये दस साल में तीन सौ हो गये। एक किसान गिरधर ने बीस रूपये लिये थे, जिसके बदले 160 रूपये भरने पड़े। उसकी खड़ी फसल लुट गई।

होरी की पूरी कहानी उसके दिनो दिन विपन्न तथा असहाय होते जाने की कहानी है, जो वस्तुतः भारतीय किसान की भी कहानी है। उसके जीवन की एक ही महत्वाकांक्षा है, एक गाय लेने की। इस महत्वाकांक्षा की पूर्ति के प्रयास में वह आजीवन संघर्ष करता है, पर उसे सफलता नहीं मिलती। यह महत्वाकांक्षा उसे किसान से मजदूर बना देती है। उसकी विपन्नता का चित्रण निम्न पंक्तियों में हुआ है। वैशाख तो किसी तरह कटा, मगर जेठ लगते-2 घर में अनाज का एक दाना न रहा। पाँच-पाँच पेट खाने वाले और घर में अनाज नदारद। दोनों जून न मिले एक जून मिलना ही चाहिए। भरपेट न मिले आधा पेट तो मिले। निराहार कोई कै दिन रह सकता है। उधार ले तो किससे, गाँव के सभी छोटे-बड़े महाजनों से तो मुँह चुराना पड़ता था। मजूरी करे तो किसकी।

ग्रामीण जीवन की विपन्नता और विवशता का इससे अधिक यथार्थ चित्रण और नहीं हो सकता। प्रेमचन्द ने जिस सूक्ष्म दृष्टि और सहानुभूति से ग्राम जीवन का अवलोकन किया है वह अद्वितीय है।

राजनैतिक समस्याएँ :

प्रेमचन्द ने यह कहा है कि साहित्य सदा राजनीति के आगे जलती हुई मशाल की तरह होता है, तो दोनों के अन्तर को उन्होने ठीक-ठीक रेखांकित कर दिया था।

उपन्यास विधा का विकास हमारे देश में स्वाधीनता संग्राम के विकास के साथ जुड़ा हुआ है। यूँ तो इसके विकास को पाश्चात्य उपन्यास-विधा ने काफी हद तक प्रभावित किया है, किन्तु जैसे-जैसे भारतीय यथार्थ मूर्त होता गया, उपन्यास का रूप भी उसी के अनुरूप होता गया। स्वाधीनता संग्राम राजनीति के साथ ही सुधारवादी और सांस्कृतिक आन्दोलन में भी व्यापक रूप से व्यक्त हो रहा था। यद्यपि नेता सुधारक और संस्कृतिकर्मी परम्परा एवं धर्म की ओट से साम्राज्यवाद से लोहा ले रहे थे, फिर भी जनवादी राजनीतिक चेतना इससे निकलने के लिए सामन्तवाद विरोधी शक्तियों के विकास पर निर्भर थी। ये शक्तियाँ दुर्बल थी। यही कारण था कि कांग्रेस के भीतर गरम दल और नरम दल दोनों अपनी-अपनी राजनीति में धर्म का इस्तेमाल अधिकाधिक करते जा रहे थे। सोवियत रूस की अक्टूबर क्रान्ति की सफलता के बाद जनवादी धर्मनिरपेक्ष राजनीति के विकसित होने की सम्भावना दिखाई देने लगी।

"महात्मा गाँधी की राजनीति में धर्म और अन्धविश्वास इतने घुल-मिल गये थे कि दोनों का भेद देख पाना कठिन लगता है। यही कारण है कि आजादी के चालीस-पैतालीस वर्षो बाद गाँधीवाद का साकारात्मक पक्ष तो लगभग नष्ट ही हो गया और जो नाकारात्मक था। उसे धुर दक्षिणपंथी राजनीतिक दलो ने अपनी राजनीति में शामिल कर लिया है। आज का नाथूराम गोड्से गाँधीवादी समाजवाद की वकालत करता है, तो यह उसकी नासमझी नही है। गाँधी ने स्वयं को सनातनपंथी हिन्दू गोरक्षक, वेद और मूर्तिपूजक बताया था यही नहीं विहार के भूचाल नर उन्होने जैसी टिप्पणी की थी, उससे तो साधारण लोग भी चौक गये थे। उन्होने कहा था कि भूचाल मनुष्य के पापों पर ईश्वर का कोप है। उनके इस वक्तव्य पर प्रेमचन्द ने अपना तीव्र प्रतिवाद व्यक्त किया।"[24] इससे स्पष्ट होता है कि वह राजनीति को विज्ञान-सम्मत, मानववादी सिद्धातों पर आधारित देखना चाहते थे।

स्वाधीनता आन्दोलन में राजनीतिक दलों के सिद्धान्तों में छिपे उनके वर्ग-स्वार्थो को प्रेमचन्द ने अपनी दूर दृष्टि से देख लिया था। अंग्रेजी गुलामी से मुक्ति पाने

के लिए जब भी 'पूर्ण स्वतंत्रता' की मांग की जाती थी, भारतीय राजे-महराजे और महाजन लोग बौखला उठते थे, क्योंकि अंग्रेजों की सहायता खत्म हो जाने पर उन्हें अपनी खटिया खड़ी होती दिखाई देती थी। इस पर प्रेमचन्द ने कहा है, क्या इसका यह कारण है कि वे समझते हैं कि स्वराज्य की दशा में उन्हें बहुत कुछ दब कर रहना पड़ेगा? क्या यह लोग उस आवाज के भय से थरथरा रहे है? हमें तो ऐसा जान पड़ता है। वह अपने दिल में समझ रहे है कि उनके हितों की रक्षा अंग्रेजी शासन में ही हो सकती है। स्वराज्य कभी उन्हें गरीबों को कुचलने और उनका रक्त चूसने नही देगा स्वराज्य गरीबों की आवाज है, डोमीनियन गरीबों की कमाई पर मोट होने वालो की।

सामन्ती-पूँजीवादी गठजोड़ के अंकुर को प्रेमचन्द ने अपने समय में ही बड़ी स्पष्टता से देख लिया था और अपने साहित्य में उसे बेझिझक प्रतिविम्बित किया था। इस निष्कर्ष के बाद, सबसे आधुनिक और जनवादी राजनीतिक व्यवस्था की ओर समाजवादी व्यवस्था की ओर तत्काल आगे बढ़ने से उन्हें कोई रोक नहीं सकता था। किसानो, मजदूरों और दलितो के प्रति गहरा सुहानुभूति होने के कारण, उनके एक राजनीतिक संगठन की जरूरत को वे गहराई से अनुभव करते रहे, उनके समय में जब कभी ऐसा प्रयास किया भी गया तो, उन्होनें यह भी देखा कि सामन्ती-पूँजीवादी वर्ग के लोग उस पर तत्काल हमला करने को तैयार हो जाते है। प्रेमचन्द ने पूरी शक्ति से गरीबों का पक्ष लिया और शासकों की कड़ी आलोचना की।

"अँग्रेजी राज में गरीबों, मजदूरों और किसानों की दशा जितनी खराब है और होती जा रही है, उतनी समाज के किसी और अंग की नहीं काँग्रेस के मेम्बर या और लोग भी कभी-कभी न्याय और नीति के नाते भले ही किसानों की वकालत करें, लेकिन किसानों के नाना प्रकार के दुःखों और वेदनाओं की खबर उन्हें नहीं हो सकती जो एक किसान को हो सकती है उनकी शक्ति बिखरी हुई है। अगर उन्हें संगठित करने की कोशिश की जाती है तो सरकार, जमींदार, सरकारी मुलाजिम और महाजन सभी भन्ना उठते है, चारों ओर हायतौबा मच जाती है, बोल्शेविज्म का हौवा बताकर, उस आन्दोलन को जड़ से खोदकर फेंक दिया जाता है। "[25]

उनके ऐसे राजनीतिक विचार, जिनमें से कुछेक अनुच्छेद ही यहाँ उद्धृत किये गये है, उनके उपन्यासों में पात्रो के व्यवहारों और विचारों में बिम्ब बन गये। प्रेमचन्द का विश्वास, प्रतीक पुरूषों का आश्रय छोड़ चुका था। वे चाहे गाँधी रहे हो

या नेहरू । यह अविश्वास, उन्हें यथार्थ की ओर पक्की जमीन पर ले आया। अगर उनकी राजनीतिक समझ परिपक्व और पैनी न होती तो उनका यथार्थ भी आदर्शो के जाल से मुक्त न हो पाता इसलिए 'गोदान' में चरित्रों के वर्गीय जीवनाधारों का उद्घाटन और विश्लेषण करते हुए, राजनैतिक विश्वासों के असलियत को परखना जरूरी था।

'गोदान' की कथावस्तु भी 'होरी' नामक किसान के चारों ओर सर्पिल गति से विकसित होती है। तत्कालीन राजनीति में सामन्ती और महाजनी तत्वों की प्रबलता थी और इसी वर्ग के लोग कांग्रेस के नेता थे। दैनिक जीवन, सामाजिक संबंधों और नैतिक विश्वासों में उनकी राजनीति की असलियत कैसी थी, इसे गोदान के केन्द्रीय पात्र होरी के चरित्र के माध्यम से प्रतिबिम्बित किया गया है। इस तरह, इस उपन्यास में राजनीति प्रत्यक्षीकरण का रूप न होकर, सौन्दर्य-बोध की वस्तु बन गई है।

उपन्यास के दूसरे अध्याय में ही दुहरा-तिहरा जीवन जीने वाले सामन्ती राजनीतिज्ञों के चरित्रों की रूपरेखा आकार ग्रहण कर लेती है। खुद प्रेमचन्द की अपनी राजनीति क्या थी? जब किसी ने उनसे यह सवाल किया तो उत्तर देते हुए लिखा "मैं तो उस आने वाली पार्टी के मेम्बर हूँ जो कोतहुन्नास के सियासी तालीम को अपना दस्तूर-उल-अमल बनाए। "[26] यानी वह अभी तक किसी पार्टी में शामिल नहीं थे, और एक ऐसी पार्टी के बनने का इन्तजार कर रहे थे, जो श्रमिकों और दलितों की पार्टी होगी, जिसकी राजनीतिक शिक्षा और अमल अमीरों की पार्टियों से एकदम अलग होगा।

संदर्भ ग्रंथ

1. गोदान, प्रेमचन्द, पृष्ठ संख्या, 16-17
2. गोदान, प्रेमचन्द, पृष्ठ संख्या, 24
3. गोदान, प्रेमचन्द, पृष्ठ संख्या, 16
4. गोदान, प्रेमचन्द, पृष्ठ संख्या, 214
5. विविध प्रसंग भाग तीन, सम्पादक अमृतराय पृष्ठ संख्या,
6. भारतीय ग्रामीण जीवन की समस्याएँ और प्रेमचन्द, सम्पादक जितेन्द्र श्रीवास्तव, पृष्ठ संख्या, 14

7. गोदान, प्रेमचन्द, पृष्ठ संख्या, 14
8. गोदान, प्रेमचन्द, पृष्ठ संख्या, 138
9. प्रेमचन्द की प्रासंगिकता, सम्पादक अमृतराय, पृष्ठ संख्या, 36
10. विविध प्रसंग भाग तीन, सम्पादक अमृतराय, पृष्ठ संख्या, 262
11. वरदान, प्रेमचन्द रचनावली, भाग एक, पृष्ठ संख्या 475
12. गबन, प्रेमचन्द, पृष्ठ संख्या 303
13. विविध प्रसंग भाग तीन, सम्पादक अमृतराय औरतों का क्रय-विक्रय पृष्ठ संख्या 261
14. वेश्या-प्रेमचन्द, पृष्ठ संख्या 55
15. सेवासदन, प्रेमचन्द, पृष्ठ संख्या 100
16. सेवासदन, प्रेमचन्द पृष्ठ संख्या 266-67
17. राजकमल प्रकाशन दिल्ली से प्रकाशित 'सेवासदन' की डॉ. परमानन्द श्रीवास्तव द्वारा लिखी भूमिका से पृष्ठ संख्या 12
18. गोदान, प्रेमचन्द, पृष्ठ संख्या 272
19. गोदान की महाजनी सभ्यता (लेख) डॉ. शंभूनाथ गोदान का महत्व, सम्पादक डॉ. सत्य प्रकाश मिश्र, पृष्ठ संख्या 142, प्रथम संस्करण, सुमित प्रकाशन, इलाहाबाद
20. गोदान, प्रेमचन्द पृष्ठ संख्या 01
21. गोदान,प्रेमचन्द पृ. सं. 1
22. गोदान की महाजनी सभ्यता (लेख) डॉ- शंभुनाथ गोदान का महत्व (ग्रंथ) सम्पादक डॉ- सत्य प्रकाश मिश्र, पृष्ठ संख्या 142, प्रथम संस्करण सुमित प्रकाशन इलाहाबाद
23. गोदान, प्रेमचन्द, पृष्ठ संख्या 07
24. गोदान की संरचना में राजनीति और साहित्य (लेख) नीलकांत गोदान का महत्व (ग्रंथ) सम्पादक डॉ. सत्य प्रकाश मिश्र पृष्ठ संख्या 149 प्रथम संस्करण, सुमित प्रकाशन इलाहाबाद।
25. गोदान की संरचना में राजनीति और साहित्य (लेख) नीलकांत गोदान का महत्व (ग्रंथ), सम्पादक डॉ- सत्यप्रकाश मिश्र, पृ. सं. 150, प्रथम संस्करण सुमित प्रकाशन इलाहाबाद।

26. गोदान की संरचना में राजनीति और साहित्य (लेख) नीलकांत गोदान का महत्व (ग्रंथ), सम्पादक डॉ. सत्य प्रकाश मिश्र, पृष्ठ संख्या 154 प्रथम संस्करण सुमित प्रकाशन इलाहाबाद।

किसान समस्या और गोदान

'गोदान' प्रेमचन्द का अन्तिम पूर्ण उपन्यास है। स्वभावतः उसमें प्रेमचन्द का यथार्थवाद सम्बन्धी अन्तिम दृष्टिकोण प्रकट हुआ है। गोदान का मुख्य या केन्द्रीय विषय है जमीदारों, महाजनों और सरकारी अमलों के शोषण के फलस्वरूप दयनीय जिन्दगी जीने वाला भारतीय किसान जिसका प्रतिनिधित्व होरी और उसका परिवार करता है। ग्रामीण जीवन का ऐसा यथार्थवादी और विशद चित्रण शायद ही किसी भारतीय उपन्यास में मिले। हिन्दी की तो बात ही अलग है। गोदान भारतीय कृषक जीवन की आँसू भरी कहानी, विषाद गीत है। ग्रामीण का शायद ही कोई पहलू हो जिस पर उपन्यासकार ने अपनी सहानुभूति दृष्टि न डाली हो। कथाकार ने बेलारी के समस्त गरीब किसानों को जमींदार, महाजन और पुलिस के शोषण की चक्की में पिसते दिखाया है। फसल हो या न हो, जमीदार लगान वसूलेगा ही साथ ही समय-समय पर किसी धार्मिक उत्सव के लिए 'सगुन' किसी बड़े पदाधिकारी की दावत के लिए चन्दा, बेगार आदि भी किसानों को देना है। जमीन की बेदखली की डर से किसान महाजन से कर्ज लेता है। महाजन इतनी कड़ी सूद पर कर्ज देता है कि एक बार जो किसान कर्ज के दलदल में फँसता है, वह आजीवन उससे मुक्त नहीं हो पाता। पुरोहित भी धर्म, ईश्वर और परलोक का भय दिखाकर किसानों को लूटता है। समय-समय पर पुलिस कर्मचारी और सरकारी अमले भी किसानों का शोषण करने से बाज नहीं आते। यह भारतीय किसान प्रेमचन्द के जमाने में दुर्दान्त शोषण चक्र का शिकार था, जिसका चित्रण गोदान में किया गया है।

प्रेमचन्द को किसान जीवन का महान् रचनाकार माना जाता है, जो कि उचित भी है। किसान-जीवन की समस्याओं के प्रति जो गहराई और गम्भीरता उनके रचना-कर्म में दिखती है, वह उनके राष्ट्रीय हित चिन्ता का ही कारण है। वे अच्छी तरह समझ चुके थे कि समाज में जो दलित है, किसान-मजदूर है, इनको सुखी रखने और साथ लेकर चलने से ही राष्ट्रीय समस्याओं का हल हो सकेगा। यहाँ कहने की आवश्यकता नहीं है कि प्रेमचन्द के समय में किसानों की स्थिति बड़ी दयनीय थी। उनके ऊपर एक ओर अंग्रेजी शासन का दबाव था तो दूसरी ओर

जमींदारों का जुल्म। इन दोनों के बीच पिस रहे किसान अपनी मेहनत की कमाई भी खो देते थे। कहना चाहिए कि उनसे उनकी मेहनत की कमाई छीन ली जाती थी। सन् 1932 के दिसम्बर में लिखे अपने एक लेख में 'हतभागे किसान' में प्रेमचन्द ने लिखा था—"भारत के अस्सी फीसदी आदमी खेती करते हैं। कई फीसदी वह है जो अपनी जीविका के लिए किसानों के मुहताज है, जैसे गाँव के बढ़ई, लुहार आदि। राष्ट्र के हाथ में जो कुछ विभूति है, वह इन्ही किसानों और मजदूरों की मेहनत का फल है। हमारे स्कूल और विद्यालय, हमारी पुलिस और फौज, हमारी अदालतें और कचहरियाँ, सब उन्ही की कमायी के बल पर चलती है, लेकिन वही जो राष्ट्र के अन्न और वस्त्रदाता है, पेट भर अन्न को तरसते हैं, जाड़े-पाले में ठिठुरते है और मक्खियों की तरह मरते है। "[1] प्रेमचन्द के युग में किसानों की स्थिति इसी प्रकार थी। कृषि भारत की मुख्य व्यवसाय है, इसीलिए भारत को कृषि प्रधान देश कहा जाता है क्योंकि यहाँ की 65% लोग कृषि करते है। प्रेमचन्द 'गोदान' में भोला अहीर से कहलवाते है—"कौन कहता है कि हम-तुम आदमी है। इल्म है। हम लोग तो बैल हैं और जुतने के लिए पैदा हुए है।"[2] बहुत पीड़ा के साथ कहे गए ये वाक्य अपने समय की सच्चाई को व्यंग्य से उभारते हैं।

आजादी के पहले के भारत में जमींदारों का बहुत प्रभाव था। अधिकांश जमींदार अंग्रेजों के गुलाम थे और उनकी ही बल पर थे जमींदार, रैयतो पर तरह-तरह के अत्याचार करते थे। ये ही जमींदार अंग्रेजी शासन को मजबूत करते थे। अपने भोग-विलास के लिए किसानों पर लगान का बोझ लादकर खुश रहते थे। इनकी स्थिति और अत्याचार के कारण राष्ट्रीय आन्दोलन को भी क्षति पहुँच रही थी। इनके विषय में प्रेमचन्द ने लिखा था— "दिल्लगी यह है कि आज भी जमींदार साहबान अपने को जमीन का मालिक ही समझते है। अंग्रेजी सरकार के पहले उनकी हैसियत दलालों की थी, जो बादशाह की ओर से लगान वसूल करने के लिए रखे जाते थे और लगान न अदा कर सकने पर निकाल बाहर किये जाते थे और बड़ी जिल्लत के साथ। अंग्रेजी राज्य में उनका मान बढ़ गया। सरकार को देश में एक ऐसे जत्थे की जरूरत थी, जो प्रजा पर उसकी हुकूमत जमाने में सहायक हों। उसने यह काम इन्हीं लगान वसूल करने वालों से लिया। तब ये लोग अपने को जमीन का मालिक समझने लगे।"[3] यह थी जमींदारों की उत्पत्ति-कथा। आगे इनके अत्याचार को रेखांकित करते हुए साफ-साफ इनके अस्तित्व के मिटने की सम्भावना व्यक्त

करते हुए उन्होंने लिखा है आप प्रजा के दिए हुए कर में से पचास फीसदी लेते है, तो उसके बदले आप प्रजा के साथ क्या सलूक करते हैं आप अगर बीज देते है, तो उसका डेढ़ा वसूल करते हैं, अगर लकड़ी या बाँस देते है, तो उसके बदले में चौगुनी बेगार लेते हैं, और आज आप का अस्तित्व इतना निरर्थक हो गया है कि आपको यह शंका हो रही हैं कि कहीं भविष्य में आपका निशान ही न मिट जाए सन् 1934 के इस कथन को पढ़ते हुए याद रखना आवश्यक है कि इससे पहले बाबा रामचन्द्र के नेतृत्व में अवध का किसान आन्दोलन हो चुका था। इस आन्दोलन की ऊष्मा ने जमींदारों को हिलाकर रख दिया था। जमींदारों के प्रति प्रेमचन्द का दृष्टिकोण उनकी कहानियों और उपन्यासों में भी साफ है। प्रेमचन्द की कहानी 'नमक का दरोगा' के पण्डित अलोपीदीन के विषय में प्रेमचन्द लिखते हैं— "पण्डित आलोपीदीन इस इलाके के सबसे प्रतिष्ठित जमींदार थे। लाखों रूपये की लेन-देन करते थे। इधर छोटे से बड़े कौन ऐसे थे, जो उन के ऋणी न हों। व्यापार भी लम्बा-चौड़ा था। अंग्रेजी अफसर उनके इलाके में शिकार खेलने जाते और उनके मेहमान होते।"[4]

'सेवासदन' उपन्यास में जमींदार महंथ रामदास यज्ञ और तीर्थ-यात्रा के लिए अपनी असामियों पर हल पीछे पाँच रूपया चन्दा लगा देते है। एक वृद्ध अहीर चेतु इसका विरोध करता है तो उसकी हत्या करवा देते है। 'प्रेमाश्रम' में जमींदार परिवार की एक सदस्या विद्या कहती है—"उस समय जब अकाल पड़ा और प्लेग भी फैला, तब हम लोग इलाके पर गए। उन दिनों की बाबूजी की निदर्यता देखकर मेरे रोयें खड़े हो जाते थे। असामियों से रूपये वसूल न होते तो वह चिढ़ कर असामियों पर गुस्सा उतारते। सौ-सौ मनुष्यों को एक पांत खड़ा करके हंटरों से मारने लगते। बेचारे तड़प-तड़प कर रह जाते, पर उन्हें तनिक भी दया न आती थी।"[5]

'पछतावा' कहानी के जमींदार कुँवर विशाल सिंह कहते है किसानों पर बकाया लगान की नालिश की जाएगी, फसल नीलाम करा लूँगा । जब भूखे मरेगें तब सूझेगी। जो रूपया वसूल हो चुका है, वह बीज और ऋण के खाते में चढ़ा लीजिए ये थे जमींदार ।

'गोदान' में प्रेमचन्द कहते हैं कि—"किसान पक्का स्वार्थी होता है, इसमें संदेह नहीं। उसकी गाँठ से रिश्वत के पैसे बड़ी मुश्किल से निकलते है, भाव-ताव में भी वह चौकस होता है, ब्याज की एक-एक पाई छुड़ाने के लिए वह महाजन की घण्टों चिरौरी करता है, जब तक पक्का विश्वास न हो जाय, वह किसी के फुसलाने

में नहीं आता, लेकिन उसका सम्पूर्ण जीवन प्रकृति से स्थायी सहयोग है। वृक्षों में फल लगते हैं, उन्हें जनता खाती है, खेती में अनाज होता है, वह संसार के काम आता है, गाय के थन में दूध होता है, वह खुद पीने नहीं जाती, दूसरे ही पीते है, मेघों से वर्षा होती है, उससे पृथ्वी तृप्त होती है, ऐसी संगति में कुत्सित स्वार्थ के लिए कहाँ स्थान? होरी किसान था और किसी के जलते हुए घर में हाथ सेंकना उसने सीखा ही न था ।"[6] किसानों के पास खाने के लिए अन्न नहीं है और गोदान के जमींदार राय साहब रामलीला कराने के लिए होरी से कहते है "तुम्हारे गाँव (बेलारी) से मुझे कम से कम पाँच सौ की आशा है।"[7]

एक ओर किसान पर लूट और दूसरी ओर उनकी स्थिति का कोई ख्याल नहीं। कृषि की उन्नति के विषय में कोई चिन्ता नहीं। प्रेमचन्द इसको रेखांकित करते हुए एक 'डेटा' प्रस्तुत करते हैं कि लार्ड कर्जन ने 1901 में यहाँ की व्यक्तिगत आय का अनुमान तीस रूपया साल किया था। 1915 में एक दूसरे शासक ने इस अनुमान को पचास रूपये तक पहुँचाया और 1915 में वह समय था जब योरोपिय महाभारत ने चीजों का मुल्य बहुत बढ़ा दिया था।

प्रेमचन्द इस बात को लेकर बिल्कुल ही साफ थे कि राष्ट्रीय उन्नति के लिए किसानों-मजदूरों का विकास बहुत आवश्यक है। अपनी इसी विचारधारा के तहत वे किसानों के पक्ष में खड़े होते है। उनके लिए यह बड़े दुःख का विषय था कि मुट्ठी भर लोग देश की अस्सी फ़ीसदी से अधिक आबादी को चूस रहा है। दिन-रात परिश्रम करने वाले भूखों मरते हैं और आराम से 'खटिया' तोड़ने वाले मौज करते है।

'गोदान' में किसानों के शोषण का रूप ही दूसरा है। यहाँ सीधे-सीधे रायसाहब के कारिंदे होरी का घर लूटने नहीं पहुँचते। लेकिन उसका घर लुट जरूर जाता है। "यहाँ अंग्रेजी राज के कचहरी जमीन छिन जरूर जाती है। होरी के विरोधी बड़े सतर्क है। वे ऐसा काम करने में झिझकते हैं जिससे होरी दस-पाँच को इकट्ठा करके उनका मुकाबला करने को तैयार हो जाए । वह उनके चंगुल में फँसकर तिल-तिल कर मरता है लेकिन समझ नहीं पाता कि यह सब क्यों हो रहा है। वह तकदीर को दोष देकर रह जाता है, समझता है, यह सब भाग्य का खेल है, मनुष्य का इसमें कोई बस नहीं।"[8]

होरी अकेला है तो इसकी जिम्मेदारी ऐतिहासिक परिस्थितियों पर है। उस समय तक किसान को कर्ज के बोझ से हल्का करने की समस्या किसान-आंदोलन

का मुख्य अंग न बन पाई थी। स्वाधीनता आंदोलन का अर्थ अंग्रेज के झंडे को हिन्दुस्तान के बाहर करना समझा जाता था। प्रेमचन्द चाहते थे, अंग्रेज का झंडा बाहर जाए। इसीलिए 'प्रेमाश्रम' से लेकर 'गोदान' तक उनकी कोशिश यही रही थी कि इस मशीन के तौर-तरीकों को जनता के सामने जाहिर करें जिससे कि झंडे के साथ वह विलायती शोषण की जड़ भी हिन्दुस्तान से उखाड़ फेंके।

प्रेमचन्द समाज के प्रवाह को बहुत गहराई से देखते थे। उस जमाने में, जब स्वराज का मतलब अंग्रेजी साम्राज्य के अन्दर ही रहना था, प्रेमचन्द ने लगान बन्दी को स्वाधीनता-आन्दोलन की रीढ़ बतलाया था। उस समय, जब लोग कर्ज की समस्या को किसान-समस्या या आन्दोलन की एक बुनियादी समस्या न समझते थे, प्रेमचन्द ने उस पर तेज रौशनी डाली थी। "वह बराबर कोशिश कर रहे थे कि आजादी का आन्दोलन किसानों की बुनियादी समस्याओं को अपने अन्दर समेट ले, वह अंग्रेजी राज के शोषण-चक्र पर वार्निश करने के बदले उसे जड़ से खोदकर फेंक दे ।"[9]

इस मशीन को तेल पीलानेवालों में सेमरी के रायसाहब मुख्य है। किसानों की अंटी से पैसा निकालने के लिए इन्होंने जो दाव-पेंच ईजाद किए हैं, उन्हें देखते हुए ज्ञानशंकर, राय कमलानन्द, राजा विशालसिंह अबोध बच्चे मालूम होते है। ज्ञानशंकर एक भंयकर खलनायक है, लेकिन 'गोदान' के रायसाहब को खल कौन कहेगा? सत्याग्रह- संग्राम में बहुत यश कमा चुके है। कौसिल की मेंबरी तक छोड़ दी थी और जेल चले गए थे। इलाके के आदमी उन पर घोर श्रद्धा करने लगे थे। तब क्या इनके इलाके के किसानों का जीवन दूसरी जगह के किसानों से कुछ दूसरी तरह का था? नहीं प्रेमचन्द लिखते है—"यह नहीं कि उनके इलाके में असामियों के साथ कोई खास रिआयत की जाती हो, या डाँड़ और बेगार की कड़ाई कुछ कम हो, मगर यह सारी बदनामी मुखतारों के सिर जाती थी। रायसाहब की कीर्ति पर कोई कलंक न लग सकता था। सिंह का काम तो शिकार करना है, अगर वह गरजने और गुर्राने के बदले मीठी बोली बोल सकता, तो उसे घर बैठे मनमाना शिकार मिल जाता। शिकार की खोज में उसे जंगल में न भटकना पड़ता।"[10]

रायसाहब उन हिंसक पशुओं में हैं जो गरजने और गुर्राने के बदले मीठी बोली बोलना सीख गए हैं। शिकार अपनी जान से हाथ धोता है लेकिन मीठी बोली

सुनता हुआ, अपाहिज होकर, गरजने और गुर्राने से सावधान होकर उस जंगली पशु से लड़ता हुआ नहीं।

कुछ-कुछ इसी तरह का चरित्र 'कर्मभूमि' के महंत जी के नाम है। अमरकांत से किसानों की दुःख -कथा सुनकर उनकी आँख में आँसू आ जाते है। भगवान् को स्मरण करके कहते हैं.... "यह तुम्हारी क्या लीला है।"[11]

लेकिन धर्म की चादर का रंग फीका पड़ने लगा था। गुदड़ भी, जो बड़ा श्रद्धालु है, महंत जी के पंडों के कारनामे अच्छी तरह जानता है। रायसाहब ने एक दूसरी चादर ओढ़ रखी थी, जो भक्तों पर और भी ज्यादा असर डालती थी। यह चादर देश भक्ति की थी।

सत्याग्रह-संग्राम में बड़ा यश कमाने के बाद भी रायसाहब और अंग्रेजी राज के संबंधों में कोई अन्तर न पड़ा था। प्रेमचन्द ने लिखा है..."रायसाहब राष्ट्रवादी होने पर भी हुक्काम से मेल-जोल बनाए रखते थे।"[12] यह ऐसा राष्ट्रवाद था, जो किसानों से भर मुठ्ठी रूपया भी वसूल करता था, अपने ऊपर उसके लिए बदनामी न आने देता था, अंग्रेजी राज से अपने संबंध भी बनाए रखता था।

होरी से मिलने पर रायसाहब पहले तो उसे पुष्प-वाटिका के सीन में माली बनकर सीता जी को गुलदस्ता भेंट करने का आदेश देते है फिर मानो कोई भूली बात याद करके कहते हैं— "और देख, असामियों से ताकीद करके कह देना कि सब के सब शगुन करने आएँ।"[13]

इतने से ही होरी का पिंड नहीं छूट जाता। रायसाहब असामियों से देर तक बातें करते है। उनका व्यवहार दूसरे अफसरों और रईसों जैसा नहीं है। मानों इस तरह वह जताना चाहते हो कि वह असामियों को अपनी ही तरह का मनुष्य समझते है। होरी से कहते है—"कारकुन को तो जो कुछ करना है वह करेगा ही, लेकिन असामी जितने मन से असामी की बात सुनता है, कारकुन की नहीं।'[14]

प्रेमचन्द ने अक्टूबर 1932 में अपने एक लेख में लिखा कौन नहीं जानता कि भारत के किसान बुरी तरह कर्ज के नीचे दबे हुए है। उनका प्रायः सभी काम कर्ज से ही चलता है। बीज वह सूद पर लेते हैं या पठानों से। बैल भी वह प्रायः फेरी करने वाले व्यापारियों से उधार ही लिया करते हैं। शादी-गमी, तीर्थ-व्रत में तो अपनी सम्मान-रक्षा के लिए उन्हें कर्ज लेना ही पड़ता है। कितने जमींदार और साहुकार किसानों या किसान-मजूरों को सौ-पचास रूपया उधार देकर उनसे

आजीवन मजदूरी कराते रहते हैं। प्रेमचन्द ने 'सवा सेर गेहूँ' कहानी में इसी मार्मिक यथार्थ को उद्घाटित किया है। पिता की मृत्यु के बाद पुत्र से भी बेगार करवाया जाता है। और ऐसा करवाते हुए मन में कोई हिचक नहीं होती। दुनिया को भगवान का भय दिखाने वाले ऐसे मामलों में भगवान से भी ऊपर हो जाते है।

कर्ज में डूबे भारतीय किसानों के विषय में अपने एक अन्य लेख 'जबर्दस्ती' में प्रेमचन्द ने कहा है। भारतीय किसानों की इस समय जैसी दयनीय दशा है, उसे कोई शब्दों में अंकित नहीं कर सकता। उनकी दुर्दशा को वे स्वयं जानते हैं या उनका भगवान जानता है। जमींदार को समय पर मालगुजारी चाहिए, सरकार को समय पर लगान चाहिए, खाने के लिए दो मुट्ठी अन्न चाहिए, पहनने के लिए एक चीथड़ा चाहिए, चाहिए सब कुछ, पर एक ओर तुषार तथा अतिवृष्टि फसल को चौपट कर रही है, एक ओर आँधी उनके रहे-सहे खेत को भी भ्रष्ट कर रही है दूसरी ओर रोग, प्लेग, हैजा, शीतला, उनके नौजवानों को हरी-भरी तथा लहलहाती जवानी में उसी तरह दुनिया से उठाये लिए चली जा रही है, जिस तरह लहलहाता खेत अभी छः दिन पूर्व पत्थर-पाले से जल गया। गल्ला पैदा हो रही है, पर भाव इतना मन्दा है कि कोई दो वक्त भोजन नहीं कर सकता। स्त्री के तन पर जो दो-चार गहने थे, वो साहूकार के पेट से बच कर सरकार की मालगुजारी के पेट में चले गए। नन्हें बच्चे, जो चिथड़ा ओड़कर जाड़ा काटते थे, वही अब उनका पिता पहन कर तन की लाज ढ़क रहा है। माता के पास केवल इतना ही वस्त्र है जितने से वह घूंघट काढ़ सके- धोती चाहे टेहुने तक ही क्यों न खिसक आए यही है भारतीय किसानों की समाज में स्थिति और जमींदार को मालगुजारी चाहिए। 'पूस की रात' में हल्कू के सारे पैसे जमींदार ले लेता है। उसकी फसल जानवर नष्ट कर देते है। ठण्ड में उसके पास कपड़ा नहीं है, इसलिए ठण्ड के मारे वह जानवरों को नहीं भगा पाता इस तरह से उसकी सारी फसल जानवर खा जाते है इतनी दयनीय स्थिति के बाद भी जमींदार से किसान हल्कू मुक्त नहीं हो पाता है उसकी पत्नी मुन्नी दुःखी होकर कहती है—"अब मजदूरी करके मालगुजारी भरनी पड़ेगी।"[15] इससे अधिक अमानवीयता क्या होगी कि भरे पेट के लोग अधिकार समझ कर अत्याचार करते है। 'गोदान' में होरी कहता है—"साठ तक पहुँचने की नौबत न आएगी धनिया। इसके पहले ही चल देगें।"[16] भारतीय किसान का प्रतिनिधित्व करता होरी भारतीय किसान के जीवन के सर्वाधिक कटु पक्ष की ओर इशारा करता है। जिन्हें भूखे रहकर कठिन परिश्रम करना हो,

बिना कपड़ो के पूस की रातें काटनी हो, चैत-बैसाख की धूप-लू में जलना-चलना और उठना हो, वे भरी जवानी में न मरेंगे तो कौन मरेगा।

प्रेमचन्द किसानों के हित के लिए नए-नए उपाय सोचने में लगे थे, ताकि इस वर्ग का उद्धार हो सके। यहाँ ध्यान देने की आवश्यकता है कि पूरे लेखन में प्रेमचन्द किसानों को जातियों अथवा धर्म में न बाँट कर एक वर्ग के रूप में देखते है। इस रूप में देखने पर ही किसानों का हित तब भी था, आज भी है। इस हित-चिन्ता के फलस्वरूप ही वे किसानों के लिए चकबन्दी की बात कर रहे थे। सन् 1932 के अक्टूबर में उन्होने अपने लेख 'अराजी की चकबन्दी' में लिखा है जब तक चकबन्दी न की जाएगी, कृषि में कोई सुधार न होगा, न नई जिन्सें पैदा की जा सकेंगी। कृषि की उन्नति की यह पहली सीढ़ी है और हमें आशा है, सरकार इसे हाथ में लेने में देर न करेंगी। इसी वर्ष अपने एक अन्य लेख 'हतभागे किसान' में उन्होने दूसरी जरूरत जमीन की चकबन्दी है। जमीन का बटंवारा इतनी कसरत से हुआ है और हो रहा है कि जिसकी कोई हद नहीं। दक्षिण में सन् 1771 ई० से औसत जमाबन्दी चालीस एकड़ थी। 1915 ई0 में वह केवल सात एकड़ भी गाँव के चारों दिशाओं में स्थित होता है, इसलिए उसमें बहुत परिश्रम व्यर्थ हो जाता है। चकबन्दी हो जाने से इतना फायदा होगा कि किसान अपने चक को बाड़ों से घेर सकेगा, उसमें कुएँ बनवा सकेगा, खेती की निगरानी कर सकेगा, इससे उसकी उपज में कुछ बढ़ती होने की आशा हो सकती है। आज भी चकबन्दी किसानों के लिए बहुत राहत की बात होती है। यद्यपि कुछ लोग पैसे के जोर पर इसमें भी फायदा उठाते ही हैं तथापि यह एक उचित व्यवस्था है जिसने प्रेमचन्द के बाद के समय में अपनी सार्थकता को बखूबी साबित किया है। प्रेमचन्द की मान्यता थी कि—"हमें तो उन्नति के लिए ऐसे विधानों की जरूरत है जो समाज में विप्लव किए बिना ही काम में लाए जा सकें।" [17]

प्रेमचन्द अपने आरम्भिक लेखन में जमींदारी व्यवस्था में सुधार की आकांक्षा रखते दीख पड़ते है किन्तु जैसे-जैसे उनका लेखन प्रौढ़ हुआ है, वैसे-वैसे वे जमींदारी प्रथा के उन्मूलन की ओर अग्रसर होते दीख पड़ते है। वे साफ-साफ जमींदारों की उपादेयता पर प्रश्न खड़ा कर देते हैं। उनके लिए कृषि व्यवस्था में अगर कोई महत्वपूर्ण है तो सिर्फ किसान और मजदूर। वे इन दोनों वर्गों का जम कर पक्ष लेते हैं। सन् 1932 में लिखे अपने एक लेख 'हतभागे किसान' में वे लिखते हैं—

“खेती की पैदावार बढ़ाने की ओर अभी तक काफी ध्यान नहीं दिया गया। जिनको भोजन का ठिकाना नहीं है, जो नाक तक ऋण के नीचे दबा हुआ है, उससे यह आशा नहीं की जा सकती कि वह नई तरह के बीज या औजार या खाद खरीदेगा। उसे तो पुरानी लीक से जौ भर हटना भी दुस्साहस मालूम होता है। उसमें कोई परीक्षा करने की, किसी नई परीक्षा का जोखिम उठाने की सामर्थ्य नहीं है। उसे तो लागत के दामों में यह चीजें किस्तवार अदायगी की शर्त पर दी जानी चाहिए। सरकार के पास इन कामों के लिए हमेशा धन का अभाव रहता है। हमारे विचार में इससे ज्यादा जरूरी सरकार के लिए कोई काम ही नहीं है।"[18]

प्रेमचन्द सम्भवतः अकेले लेखक हैं जो इतने प्रखर ढंग से किसानों के विषय में सरकार के दायित्व की चर्चा करते हैं। इतना ही नहीं, वे प्रान्तीय कौसिल में जनता के प्रतिनिधियों से अपील भी करते हैं कि यदि सरकार किसानों कि हित में कोई काम कर रही है तो वे उसका सहयोग ही करें, क्योंकि इससे किसानों को फायदा होगा अर्थात् प्रकारान्तर से राष्ट्र को फायदा होगा।

प्रेमचन्द किसानों की समस्याओं की ओर दृष्टि डालते हुए कहते हैं कि किसानों में ‘एका' ही नहीं है। गोदान में भोला कहता है.... "हम लोग तो बैल हैं और जुतने के लिए पैदा हुए है। उस पर भी एक दूसरे को देख नहीं सकते एका का नाम नहीं। एक किसान दूसरे के खेत पर न चढ़े तो जफा कैसे करे, प्रेम तो संसार से उठ गया ।"[19] इसी 'एका' की ओर ध्यान दिलाते हुए उन्होंने अपने लेख 'शक्कर सम्मेलन' में कहा है जब तक देश के सुदिन नहीं आते और सभी व्यवसायों का राष्ट्रीकरण नहीं हो जाता, पूँजीपतियों के हाथ में किसानों और मजूरों की किस्मत रहेगी और सरकार ऊपरी मन से नियन्त्रण करने का स्वांग भर कर कोई उपकार नहीं कर सकती। हम तो किसानों को यही सलाह देंगे कि वे खुद अपना संगठन करें। यहाँ याद रखने की बात है कि सन् 1933 में जब प्रेमचन्द ये बातें लिख रहे थे, उससे पूर्व बारदोली और अवध में किसान आन्दोलन हो चुके थे। यह बात साफ है कि उनके ऊपर इन आन्दोलनों का पर्याप्त प्रभाव पड़ा था। बारदोली किसान आन्दोलन का प्रभाव कर्मभूमि में दिखता है। कर्मभूमि की रचना के कुछ ही समय पूर्व 1928 ई0 में बारदोली के किसान आन्दोलन सफलतापूर्वक समाप्त हो चुका था। 'कर्मभूमि' पर बारदोली के किसानों की विजय का भी अप्रत्यक्ष प्रभाव देखा जा सकता है। संयुक्त प्रान्त के किसानों के लगान-बन्दी आन्दोलन को तो प्रेमचन्द ने

अपने आसपास ही अपनी आँखो से देखा और अनुभव किया था। कर्मभूमि के लगानबन्दी आन्दोलन के मूल में 1929 ई0 का वह विश्वव्यापी आर्थिक संकट है जिसका सर्वाधिक दुष्प्रभाव किसानों पर पड़ा। प्रेमचन्द ने 1929 ई0 की आर्थिक मन्दी से उत्पन्न परिस्थितियों के चित्रण का श्लाघनीय प्रयत्न किया है और लगानबन्दी आन्दोलन के चित्र खींचकर सरकारी दमन-नीति की क्रूरता और नृशंसता का नग्न नृत्य दिखाया है। किसान आन्दोलन में उग्र-दल का प्रतिनिधि आत्मानन्द है और समझौता करना चाहता है किन्तु परिस्थितियाँ उसका साथ नहीं देती और उसे आन्दोलन करना पड़ता है । उसकी जेल यात्रा भी आन्दोलन-कालीन नेता की भांति ही चित्रित की गई है। कहने का आशय यह कि किसान संघर्षो के जीवन्त चित्रण में प्रेमचन्द को समाज में हो रहे आन्दोलनों से भी बल मिला।

प्रेमचन्द को किसानों से गहरा लगाव था। उसी प्रकार का लगाव जैसे किसान का अपने खेतों के प्रति और माँ-बाप का अपने बच्चों के प्रति होता है। वे सम्भवतः भारतीय साहित्य में पहले लेखक थे, जिन्होने जमींदारी प्रथा को समाप्त करने की बात कही और यह प्रश्न उठाया कि किसान और सरकार के बीच यह तीसरा वर्ग क्यों है? इसकी क्या प्रासंगिकता है? उन्होंने जमींदारों को सुरक्षा देने के प्रश्न पर सरकार की आलोचना की। कहने का आश्रय यह कि किसान भारतीय अर्थव्यवस्था के आधार हैं और उन दिनों इनकी हालत बहुत दयनीय थी, ऐसे में प्रेमचन्द अकेले ऐसे बुद्धिजीवी लेखक थे जिन्होंने किसान जीवन की सूक्ष्म से सूक्ष्म समस्याओं पर ध्यान केन्द्रित करके लिखा और लोगों तथा सरकार का ध्यान आकृष्ट किया। रामविलास शर्मा ने ठीक ही लिखा है कि— " हर कोई जानता है कि प्रेमचन्द ने समाज के सभी वर्गो की अपेक्षा किसानों के चित्रण में सबसे अधिक सफलता पाई है। वे हर तरह के किसानों को पहचानते थे, उनके विभिन्न आर्थिक स्तर, उनकी विभिन्न विचारधाराएँ, उनकी विभिन्न सामाजिक समस्याएँ जीवन के हर कोने से परिचित थे। जैसी उनकी जानकारी असाधारण थी, वैसा ही किसानों से उनका स्नेह भी गहरा था। किसानों के सम्पर्क में आने वाली शोषण की जंगी मशीन के हर कल-पुर्जे से वे वाकिफ थे।"[20] कहने की आवश्यकता नहीं कि अपनी इसी जानकारी और स्नेह के फलस्वरूप उन्होंने इतना जीवन्त साहित्य सृजित किया। फिर भी उन्हें लगता था कि अगर व्यवस्था में मूलभूत परिवर्तन नहीं हुआ तो बड़े किसान बड़े होते जाएँगे और छोटे किसान मजदूर। आज उनकी मृत्यु के लगभग 90 वर्ष

बाद हरित क्रान्ति के प्रदेशों, गुजरात, हरियाणा, पंजाब, उत्तर प्रदेश आन्ध्र प्रदेश और अन्य जगहों में किसान आत्महत्याएँ कर रहे है। वे अपनी वर्तमान स्थिति से असन्तुष्ट है। आजाद भारत में भी प्रेमचन्द के प्रिय किसान छोटे-छोटे सुखों के लिए मोहताज है। आज भी वे 'होरी' की तरह यह गाने को मजबूर है कि....

"हिया जरत रहत दिन-रैन"

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

1. विविध-प्रसंग भाग दो, सम्पादक 'डॉ. अमृत राय, पृष्ठ सं०-497-498
2. गोदान, प्रेमचन्द, पृष्ठ संख्या – 22
3. विविध-प्रसंग भाग दो सम्पादक डॉ. अमृत राय, पृ० सं० - 506 'आगरा जमींदार सम्मेलन'
4. नमक का दरोगा, प्रेमचन्द, मानसरोवर भाग आठ, पृ०सं० – 269
5. प्रेमाश्रम, प्रेमचन्द, पृष्ठ सं0-85
6. गोदान, प्रेमचन्द, पृ० सं०-9.10
7. गोदान, प्रेमचन्द पृ० सं० – 14
8. प्रेमचन्द और उनका युग, सम्पादक डॉ० रामविलास शर्मा, पृष्ठ संख्या - 97-98
9. वही, पृष्ठ संख्या - 98
10. वही, पृष्ठ संख्या – 98
11. वही, पृष्ठ संख्या- 99
12. वही, पृष्ठ संख्या – 99
13. वही, पृष्ठ संख्या – 99
14. वही, पृष्ठ संख्या – 99
15. पूस की रात, इक्यावन श्रेष्ठ कहानियाँ, प्रेमचन्द, पृष्ठ संख्या- 104-
16. गोदान, प्रेमचन्द, पृष्ठ संख्या – 06
17. विविध-प्रसंग भाग हो, सम्पादक डॉ. अमृत राय, पृ० सं0- 487
18. वही, पृष्ठ संख्या-494
19. गोदान, प्रेमचन्द, पृष्ठ संख्या – 22
20. प्रेमचन्द और उनका मुग, सम्पादक डॉ. रामविलास शर्मा, पृ० सं0-177

गोदान के पात्रों का जीवन संघर्ष

प्रेमचन्द हिन्दी उपन्यास लेखन के ख्यातिलब्ध उपन्यासकार हैं। उनके उपन्यास उनके व्यक्तित्व की झलक प्रस्तुत करते हैं। प्रेमचन्द के चरित्र उनके अपने जीवन के संघर्ष उसकी यथार्थता से ही प्रकट हुए हैं। प्रेमचन्द उपन्यास साहित्य के सम्राट कहे जाते हैं यह कहीं भी अतिश्योक्ति नहीं लगती है। प्रेमचन्द की चरित्र सृष्टि बड़ी व्यापक और वैविध्यपूर्ण है। उनके रचे चरित्रों से साक्षात्कार और उनका सहयात्री बनकर उनके साथ यात्र करना अपने में एक अनूठा अनुभव है। ध्यान देने की बात है कि प्रेमचन्द द्वारा रचे गये ये चरित्र किताबी चरित्र नहीं है। इन्हें प्रेमचन्द ने अपने जीवन क्रम में अपने समय और समाज से मुठभेड़ करते हुए खुली आँखों से उन्हें देखते परखते उसी दुनिया से हासिल किया है। जहाँ तक गोदान का सवाल है गोदान तक आते-आते प्रेमचन्द रचनाशीलता का एक लम्बा दौर तय कर चुके थे और एक प्रकार से उनकी आखिरी मंजिल तक आ पहुँचे थे।

औपन्यासिक कथा संसार के प्रमुख नियामक और उसके स्वरूप निर्धारक उपन्यास के पात्र ही होते हैं। पात्रों से ही कथा संसार बनता है। औपन्यासिक पात्रों का चुनाव, उनका सजीव चित्रण और उनके माध्यम से मानव अनुभवों, संवेदनाओं और जीवन यथार्थ की अभिव्यक्ति ही उपन्यास का उद्देश्य है। प्रेमचन्द का कथा संसार वैविध्यपूर्ण है और स्वाभाविक ही है कि उनके पात्र आर्थिक सामाजिक स्थिति, शिक्षा दीक्षा, लिंग, विचार, मानसिकता आदि दृष्टियों से अनेक वर्गो का प्रतिनिधित्व करते हैं। गोदान में यदि एक ओर ठेठ ग्रामीण पात्र हैं तो दूसरी ओर आधुनिक मानसिकता वाले नागरिक पात्र भी हैं। ग्रामीण पात्रों में भी विभिन्नआर्थिक स्थितियों के किसान, मजदूर, पटवारी, पुरोहित, जमीदार का कारिंदा, धनी किसान, साहुकार आदि अनेक वर्गो के पात्र है। नागरिक या अर्द्धनागरिक पात्रों में जमीन्दार, प्रोफेसर, सम्पादक, डॉक्टर, बैंकर, दलाल, दूकानदार आदि के साथ-साथ मजदूर तांगेवाले, छोटे दुकानदार आदि अनेक तबकों के पात्र हैं। इस पात्र समुदाय में पुरुष और स्त्रियां, बच्चे और बूढे, सवर्ण और अवर्ण, पंडित और अपढ़ अनेक प्रकार के लोग हैं।

रायसाहब अमरपाल सिंह :

रायसाहब का चरित्र होरी के समकक्ष ही उपन्यास का सबसे महत्वपूर्ण चरित्र है और होरी के चरित्र की ही तरह प्रेमचन्द ने उसे बड़ी खूबी से अपने निरीक्षण एवं अपने अनुभवों की धार पर चढ़ाते हुए निखारा और चमकाया है।

रायसाहब जिस वर्ग के जिस ढंग के आदमी हैं उसे आदमी की लड़ाई के दौर में अपने अनुभवों से प्रेमचन्द उसकी असलियत अच्छी तरह भाँप चुके थे। उपन्यास के प्रारम्भ में रायसाहब का कथा में प्रवेश करते ही जो परिचय प्रेमचन्द ने दिया है वह उनके चरित्र की एक रेखा को उभार देता है।

"पिछले सत्याग्रह संग्राम में रायसाहब ने बड़ा यश कमाया था। कौन्सिल की मेम्बरी छोड़कर जेल चले गए थे। उनकी इज्जत असामियों में ज्यादा थी। यह नहीं है कि उनकी असामियों के प्रति श्रद्धा थी या डंड बेगार की कड़ाई कम हो मगर यह सारी बदनामी मुखरों के सर जाती थी। असामियों से वे हंसकर बोल लेते थे यही क्या कम है? सिंह का काम तो शिकार करना है अगर वह गरजने और गुर्राने के बदले मीठी बोली बोल सकता तो उसे घर बैठे मनमाना शिकार मिल जाता है, शिकार की खोज में जंगल में न भटकना पड़ता।

रायसाहब राष्ट्रवादीं होते हुए भी हुक्काम से मेलजोल बनाए रखते थे। उनकी नजरें और डालियां दस्तूरियाँ जैसी की वैसी चली आती थी। साहित्य और संगीत के प्रेमी थे, ड्रामा के शौकीन, अच्छे वक्ता थे, अच्छे लेखक, अच्छे निशानेबाज।"[1]

“अपने उपन्यासों और कहानियों में प्रेमचन्द ने शोषक वर्ग के चरित्र प्रस्तुत किये है। रायसाहब उन सबसे प्रमुख है। पूरे घाघ है। मीठी बोली बोलकर अपने असामियों का गला रेतते है फिर भी उसके शुभचिंतक बने रहते है। होरी का भी यही हाल है होरी के त्रासदी के पीछे रायसाहब का दुष्चक्र सबसे ज्यादा रहता है।"[2]

फिर भी वह उनको अपना शुभचिंतक समझता है। रायसाहब अपने विचारों में जितने प्रगतिशील आत्मालोचन में जितने सत्यनिष्ठ, वाणी में जितने मृदु कर्म और व्यवहार में उतने ही दकियानूस, झूठे और ढोंगी है। मेहता उनके मित्र है लेकिन रायसाहब के सबसे बड़े आलोचक है। वे कहते हैं।

मैं तो केवल इतना जानता हूँ कि हम या साम्यवादी है या नहीं है। है तो उसका व्यवहार करे नहीं है वो बकना छोड़ दे। मैं नकली जिन्दगी का विरोधी हूँ।

गोबर और धनिया रायसाहब के असली रूप से परिचित है होरी भी जानता है फिर भी चाहकर भी वह उनके सम्मोहन से निकल नहीं पाता है। गोबर के कहने पर कि यदि वे बहुत परेशान है "तो फिर अपना इलाका हमें क्यों नहीं दे देते, हम अपने खेत, बैल, कुदाल सब कुछ उन्हें दे देगे करेगे बदला? यह सब धूर्तता है नीरी मोटमरदी है।"[3] अब तुमसे बहस कौन करे भाई? कहकर बात टाल देता है मेहता भी रायसाहब पर टिप्पणी करते हुए कहता है कि तुम्हारी जबान में जितनी वृद्धि है उसकी आधी भी तुम्हारे विचारों में आ जाती। ये कथन रायसाहब के दोमुँहेपन की पोल खोल देता है।

होरी और रायसाहब के चरित्र उपन्यास में समान्तर है। फिर भी होरी हार कर जीतता है और रायसाहब अपने झूठे ढ़ोंग के कारण हार जाते है।

होरी भी अपना मरजाद बचाने के लिए संघर्ष करता है और रायसाहब अपनी ढ़हती प्रतिष्ठा के लिए संघर्षरत है। अपनी प्रतिष्ठा बनाने के लिए उन्हें शहर के बैकरों की शरण में जाना पड़ता है। कोठियाँ और जायदाद गिरवी रखते है मित्रों की बेवफाई और अपमान का घूंट पीते हैं। होरी का भी पुत्र उसे छोड़कर शहर भागता है। और पुत्र रायसाहब का भी अपने बाप के स्वेच्छाचारी और खोखले अहं का विरोध करता है। परन्तु होरी अपने पुत्रों और भाइयों को पा जाता है लेकिन रायसाहब को उनका पुत्र नहीं मिलता वे सबसे कट कर अन्ततः अकेले हो जाते है। यही कारण है कि वे जीतकर भी हार जाते हैं और होरी हार कर भी जीतता है। होरी की त्रासदी ऐतिहासिक परिस्थितियों की ऊपज है जो उस पर थोपी जाती है।

रायसाहब के रूप में प्रेमचन्द ने ढहते सामंतवाद का एक प्रतिनिधि चरित्र हमें दिया है रायसाहब के चरित्राकंन में उन्होनें बड़ी वस्तुनिष्ठता से उनके और उनके वर्ग के यथार्थ को उभारा है। प्रेमचन्द रचित अविस्मरणीय चरित्रो में है रायसाहब का चरित्र।

होरी : गोदान का केन्द्रीय पात्र होरी है। ग्रामेतर कथा का कोई केंद्रीय पात्र नहीं होता फिर इस कथा के केंद्र में होरी निर्विवाद रूप से अवस्थित है। प्रेमचन्द ने भारतीय किसान की दुर्भाग्य गाथा प्रस्तुत करने के लिए बेलारी गाँव की कल्पना की है। वैसे प्रेमचन्द बेलारी के समस्त कृषक समुदाय के शोषण और निराशा भरे जीवन का चित्रण करते है, पर जिस परिवार को उन्होंने केन्द्र में रखा है, वह होरी का परिवार है।

जैसा कहा जा चुका है गोदान का केन्द्रीय पात्र होरी है जो सच्चे अर्थो में एक साधारण किसान है, हर दृष्टि से साधारण। आर्थिक, सामाजिक, शैक्षिक, मानसिक और नैतिक किसी भी दृष्टि से वह विशिष्ट नहीं है। आर्थिक दृष्टि से वह निम्न वर्ग का सदस्य है। उसके पास कुछ तीन बीघा जमीन, एक जोड़ा बैल, कुछ बॉस की कोठियाँ और एक कच्चा घर हैं। उसका परिवार प्राणधारक किये रहने की सीमान्त रेखा पर जीता है। किसी को दोनों जून भरपेट रोटी नसीब नहीं होती, उसके तीन लड़के बचपन में दवा दारू के अभाव में मर चुके है। उसकी पत्नी धनिया पेट की चिन्ता के कारण छतीस वर्ष की अवस्था में ही बूढ़ी जान पड़ती है। स्वयं उनका स्वास्थ्य भी चिन्ताजनक है। उसे घी, दूध मयस्सर नहीं होता। उसका बेटा गोबर दूध के लिए तरस कर रह जाता है। वह समय पर लगान भी नहीं चुका पाता। कर्ज से लदा हुआ है। पैसों के अभाव में वह गोबर और सोना का विवाह नहीं कर पा रहा है, जाड़े के दिनों में तार-तार हुई कम्बल और फटी मिरजई के सहारे रात काटता है। पत्नी धनिया तथा बेटी सोना की साड़ियां कथरी हो गयी है। प्रेमचन्द ने होरी की विपन्नता का बड़ा ही सजीव चित्रण किया है।

होरी की महत्वाकांक्षा एक साधारण किसान की महत्वाकांक्षा है। वह चाहता है कि उसके पास एक गाय होती। इस महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए वह आजीवन संघर्ष करता है, झूठ बोलता है, खुशामद करता है, छल-प्रपंच का सहारा लेता है और अन्ततः किसान की मर्यादा ताक पर रख कर सड़क पर कंकड़ डालने की मजदूरी भी करता है, पर उसे फल की प्राप्ति नहीं होती।

होरी आर्थिक दृष्टि से ही नहीं, सामाजिक दृष्टि से भी अति साधारण आदमी है वह जाति का महतो (कुर्मी) है, जिसकी गणना हिन्दू समाज के उच्च वर्ग में नहीं होती। निम्न समाज में उसे थोड़ी प्रतिष्ठा प्राप्त है, तीन-तीन, चार-चार, हल वाले महतो भी उसके सामने सिर झुकाते हैं। कहीं जाते समय खेतों में काम करने वाला किसान उसे देखकर राम-राम करते है और चिलम पीने का निमंत्रण देते है। पर होरी को यह सम्मान कुलीन वंश का होने के कारण नहीं परन्तु रायसाहब का कृपाभाजन होने के कारण मिलता है। वह झूठी और खोखली मर्यादा भावना से ग्रस्त है।

होरी साक्षर है, या निरक्षर (गोदान में इसका पता नहीं चलता) पर वह अशिक्षित है, इसमें तनिक भी संदेह नहीं। एक स्थान पर वह दुखी होकर कहता है- चालीस सात सौतालीस साल इसी तरह रोते-धोते कट गये। यह गणना पद्धति होरी

के अशिक्षित होने की सूचना देती है। उनकी भाषा एक अशिक्षित किसान की भाषा है यद्यपि वह खड़ी बोली का प्रयोग करता है, जो उसके निवास को देखते हुए अस्वाभाविक है, पर प्रेमचन्द ने बड़ी कुशलता से उसकी खड़ी बोली में अवध प्रान्त के एक अशिक्षित किसान की भाषा का भ्रम पैदा किया है। होरी के संस्कार, विश्वास और विचार भी एक अशिक्षित किसान के है। इस प्रकार शिक्षा दीक्षा और सांस्कृतिक दृष्टि से भी होरी साधारण स्तर का आदमी है।

'गोदान' की त्रासदी का नायक होरी है। जिसे भारतीय किसान के प्रतिनिधि चरित्र के रूप में प्रेमचन्द ने गोदान में अपनी पूरी रचनात्मक क्षमता एवं समूचे संवेदनात्मक एकात्म के साथ प्रस्तुत किया है। होरी भारतीय किसान इसलिए बन सका है कि उसके चरित्र में भारतीय किसान के सकारात्मक और नकारात्मक दोनों रूप समान रूप से विद्यमान है।

होरी अपने जमीन को बरकरार रखने के लिए प्राणों तक की आहुति देने के लिए तैयार था। उसे बचाने के लिए जमीदार महाजन की चापलूसी करता है, शगुन देता है, बेगार करता है, कर्ज लेता है, दंड भरता है हर संभव तरीका अपनाता है। इसी जायदाद पर उसकी मरजाद निर्भर रहती है उसी के बूते पर उसी के कीमत पर उसका परिवार पलता है उसी के नाते एक किसान के रूप में उसकी हैसियत बनती है। उसके लिए वह झूठ बोल सकता है, झूठी कसम खा सकता है, रिश्वत घूस दे सकता है, समस्त विघ्न बाधाओं से लड़ते हुए अपने घर को होम किये रहता है। "छल-छद्म, चापलूसी, खुशामद, झूठ फरेब का आसरा अपनी जायदाद मर्जाद बचाने के लिए वह भले ही निःशंक होकर धर्मभीरू और साधारण नैतिक होने के नाते ईमानदारी, सच्चाई, दया, करूणा, क्षमा, दूसरे के सुख-दुख में भागीदारी उसके चरित्र की बुनियादी विशेषताएँ है।"[4] सामंती व्यवस्था के इन मानव मूल्यों से जो आदमी की आदमीयत की पहचान है उसकी संपृक्ति उसके चरित्र का अनिवार्य हिस्सा है।

होरी अपने को रायसाहब का खास आदमी समझता है। उनकी खुशामद और चापलूसी में उसे रस मिलता है। उसका मानना है कि उनकी कृपादृष्टि के चलते ही वह अब तक बचा हुआ है नहीं तो गाँव में कौन है जिस पर कुर्की बेदखली नहीं आयी। रायसाहब उसे धनुषयज्ञ में माली का रोल देते है उसे अपना मानकर अपना दुखदर्द उससे कहते है वह इसी नशे में रहता है। इस नाते दूसरे किसानों पर उसका रोब भी रहता है। गोबर और धनिया उसके इस स्वभाव से कतई सहमत नहीं है। अपना काम निकालने के लिए वह महाजनों की भी चापलूसी करता है।

विद्रोह उसके स्वभाव में ही नहीं है समाजभीरू भी वह है पंचायत के हर निर्णय को वह स्वीकार करता है। दारोगा को रिश्वत देने के लिए कर्ज लेता है बिरादरी को भात-भोज देता है। धनिया को सरेआम पीटता है और बेइज्जत करता है। अभाव, दरिद्रता और कर्ज के बोझ के कारण वह इतना टूट चुका होता है कि ये दुर्बलताएं सहज ही उसके स्वभाव और चरित्र का अंग बन जाती है।

गोदान में होरी के चरित्र का एक दूसरा पहलू भी है जिसके नाते उपन्यास में उसे नायकत्व की गरिमा मिलती है और एक अजेय भारतीय किसान के रूप में उसकी पहचान उभरती है। यह सही है कि होरी अन्याय के खिलाफ नहीं लड़ पाता महज अपने अस्तित्व के लिए परिवार को जिन्दा रखने के लिए जिन्दगी भर लड़ता और अन्ततः हार जाता है। किन्तु यह हार उसे भीतर तक तोड़ नहीं पाती। गोबर और झुनिया फिर उसके साथ आ गये है हीरा ने आकर क्षमा मांग लिया है होरी को जैसे सब कुछ मिल जाता है। प्रेमचन्द लिखते हैं—

"होरी प्रसन्न था जीवन के सारे संकट सारी निराशाएँ मानो उसके चरणों पर लोट रही थी कौन कहता है जीवन संग्राम में वह हारा है यह उल्लास, यह गर्व, यह पुलक क्या हार के लक्षण हैं इन्हीं हारों में उसकी विजय है। उसकी छाती फूल उठी है मुख पर तेज आ गया है उसके बखार में सौ दो सौ मन अनाज भरा होता उसकी हाँडी में हजार पाँच सौ गड़े होते पर उससे यह स्वर्ग का सुख क्या मिल सकता था।"[5]

उपन्यास में होरी के इस मनुष्यता के प्रमुख संदर्भ उसके आचरण और व्यवहार के भीतर से स्थितियों के भीतर से उभरे और चमके है। अपने घर से भागी गर्भवती झुनिया उसी के घर में आश्रय पाती है।

हीरा प्रसंग पर भाई और मरजाद के मोहवश झूठी कसम खाकर धनिया को सरेआम पीटकर और बेइज्जत कर वह स्वभावगत कमजोरी जरूर प्रकट करता है किन्तु सच्चे हृदय से धनिया से मांफी मांगता है पश्चाताप करता है। गोबर द्वारा उत्प्रेरित किये जाने के बावजूद दातादीन के ऋण को स्वीकार करता है। हीरा गाय को विष देकर भाग जाता है तो उसके खेतों को जोतता है उसकी बहू को हर संभव तरीके से मदद करता है। इसकी इंसानियत का यह बुनियादी पहलू उसकी स्वभावगत कमजोरियों से कहीं ऊंचा है।

जायदाद मरजाद और अस्तित्व रक्षा के लिए आजीवन चलने वाला उसका संघर्ष कर्ज का भयानक दुष्चक्र ये उसे बरबाद कर सड़क पर गिट्टी पीटने की मजूरी

करने को बाध्य कर देता है। एक गाय रखने वाले की छोटी सी इच्छा भी पूरी नहीं हो पाती वह टूटता और टूटता चला जाता है। अपनी बरबादी को वह फिर भी भाग्य का दोष मानता है। किसी भी अन्यायी या अत्याचारी की ओर उसकी उंगली नहीं उठती। प्रेमचन्द ने उसके आत्म कथन को इस बिन्दू पर उभार कर उसकी बुनियादी मनुष्यता को उजागर कर दिया है। होरी जिन स्थितियों में अंतिम सांस लेता है वे शोषण के उस निर्मम तन्त्र का पर्दाफाश कर देती है जिसकी गिरफ्त में भारतीय किसान सदियों से अपने 'होरी का चरित्रांकन 'गोदान' में अस्तित्व की लड़ाई लड़ते हुए हार रहा है। "होरी का चरित्रांकन 'गोदान' में प्रेमचन्द की सिद्धी है। होरी को नायकत्व की गरिमा देकर प्रेमचन्द ने उस परम्परा को तोड़ा है जिसके तहत महान और लोकबिन्धुत व्यक्ति ही नायकत्व के अधिकारी माने जाते है।"[6] जीवन संग्राम में होरी एक योद्धा के रूप में सामने आता है। वह आजीवन अभाव, दैन्य और विपत्तियों से लड़ता रहता है। गो लालसा मर्यादा रक्षा और धर्म के लिए वह जिन्दगी भर लड़ता है अन्त में इसकी पराजय होती है। पर हार जीत से किसी की शूरता का निर्णय नहीं होता। शूर वह है जो बहादुरी के साथ लड़ता है, चाहे उनकी पराजय ही क्यों न हो जाए। इस अर्थ में होरी वस्तुतः शूर है।

इस विवेचन से स्पष्ट है कि होरी का चरित्र एक अत्यन्त साधारण परम्परागत किसान का चरित्र है वह एक निर्धन, दलित, पिछड़ा, परम्परागत दृष्टिकोणों वाला तथा मूल्यों वाला कृषक है। उसके चरित्र में कुछ भी विशिष्ट नहीं है। वह विनीत, मधुर, त्यागी, शुद्ध अन्तःकरण वाला, स्थिर, धार्मिक, दयालु, उदार, आत्म सम्मानित, शीलवान आदि सब कुछ है, पर सामान्य रूप से वह एक संवेदनशील, कर्तव्य परायण, स्नेही, पारिवारिक व्यक्ति है। प्रेमचन्द ने होरी के चरित्र को अपनी अशेष सहानुभूति प्रदान की है। वह इतने साधारण मनुष्य को इतना विश्वसनीय और प्रभावशाली औपन्यासिक पात्र बनाने में प्रेमचन्द विश्व साहित्य में अग्र पात्तेय है।

गोबर : गोदान में होरी यदि किसानों की पुरानी पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करता है। तो उसका बेटा गोबर उगती हुई नयी पीढ़ी का। नैतिक सामाजिक मूल्यों, विश्वासों और मान्यताओं की दृष्टि से पिता पुत्र दो छोरों पर अवस्थित है। होरी पुरानी परम्परा का अन्ध भक्त है, जबकि गोबर उसका कट्टर विरोधी, होरी सनातन हिन्दू विश्वासों और मान्यताओं में निष्ठा रखता है, जबकि गोबर उनका प्रबल विरोधी है,

होरी सामाजिक रीति-रिवाजों और मर्यादा के पीछे प्राण देता है, जबकि गोबर शोषण का प्रबल विरोधी है, वह शोषण के विरोध में जान की बाजी तक लगा देता है। गोबर उस नयी पीढ़ी का युवक है, जो बीसवीं शताब्दी में वैज्ञानिक और प्रौद्योगिक सभ्यता के उदय के साथ अंकुरित हुई है। होरी उस सामन्ती और कृषि संस्कृति का प्रतिनिधि है जो विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास के फलस्वरूप आमूल चूल परिवर्तन हो रहा रहा है और जिसका विशाल भवन धीरे-धीरे भहरा रहा है।

नयी पीढ़ी के युवक की सबसे उल्लेखनीय विशेषता है विद्रोह। जो कुछ भी प्राचीन है, परम्परागत है और जिसके आधार पर शोषणपूर्ण सामन्ती और पूँजीवादी सभ्यता टिकी हुई है, उसके प्रति विद्रोह की भावना नयी पीढ़ी के युवक के चरित्र का मूल तत्व है। गोवर इन विद्रोह के भाव से भरा हुआ। जमी-दार राय साहब के प्रति गोबर मन में आक्रोश का भाव है। राय साहब उसका ही नहीं सारे गाँव का शोषण करते है, जिसे गोवर सह नहीं पाता। उसका मन सामन्ती व्यवस्था के प्रति विद्रोह से उबल रहा है। राय साहब के प्रति गोवर के मन में उपेक्षा, घृणा, और विद्रोह का भाव है। उसे अपने पिता द्वारा राय साहब की खुशामद विल्कुल पसन्द नहीं है। होरी रायसाहब से भेंट मुलाकात करता रहता है, जिससे उसे कुछ स्पष्ट लाभ होते नहीं दिखाई देता । होरी परम्परागत अर्थ में पितृ भक्त भी नहीं है। गोबर न तो पिता का पूर्णतः अनुगमन करता है, न उस देवता की तरह पुण्य समझता है इसके विपरीत हम उसे सदा होरी की उपेक्षा और तिरस्कार करते तथा कड़वी बात कहते पाते हैं। भोला को भूसा देने के प्रसंग में होरी के प्रति गोबर का यह व्यवहार सामने आता है। वह होरी के धर्मात्मापन की खिल्ली उड़ाता है।

होरी के प्रति गोबर की उपेक्षा का एक मात्र कारण उसका विद्रोही स्वभाव है। होरी चुपचाप शोषण बर्दाश्त कर लेता है जो गोबर को पसन्द नहीं। वह होरी से इसी कारण चिढ़ा रहता है। जब गोबर साल भर बाद लखनऊ से लौटता है तो उसके मन में गाँव के पंचों के प्रति आक्रोश भरा हुआ है, क्योंकि उन्होंने होरी पर दण्ड लगाकर उसे तबाह किया है। वह झिगुरी सिंह और पं० दातादीन को ब्यग्य वचन तथा दो चार खरी-खोटी सुनाता है। पंचों पर जिन्होंने होरी से दण्ड वसूल किया है, मुकदमा करने की धमकी दे आता है। जब उसे पता चलता है कि भोला उसके बैल खोल ले आया गया है तो वह तुरंत अपने बैल वापस लाने का निश्चय होरी से व्यक्त करता है। होरी लड़ाई झगड़े से बचता है, पर गोबर इससे नहीं डरता।

प्रगतिशील विचारों वाले विद्रोही पात्र के रूप में गोबर में जो सम्भावनाएं थी, उन्हें प्रेमचन्द ने अपने आदर्शवादी दृष्टिकोण के कारण कुंठित कर दिया है। गोबर का हृदय परिवर्तन बहुत झटके के साथ हुआ है, जिससे उसकी विश्वसनीयता भी खंडित हो गयी है। गोबर के चरित्र की अन्तिम परिणति- सुशीलता, विनय और सहनशीलता उसके पूर्ववर्ती चरित्र का अनिवार्य विकास नहीं वरन बाहर से आरोपित लगती है ।

प्रो० मेहता :-

नगर की कथा से सम्बन्धित पात्रों में सबसे मुखर और तेजस्वी प्रो0 मेहता है। डॉ. रामविलास शर्मा कहते हैं—"गोदान में किसी एक पात्र को प्रेमचन्द का प्रतिनिधि नहीं कहा जा सकता। लेकिन यदि मेहता को होरी से जोड़ा जाय तो जो व्यक्ति बनेगा वह बहुत कुछ प्रेमचन्द से मिलता-जुलता होगा। मेहता को उन्होंने यदि अपने विचार दिये है तो होरी बराबर परिश्रम करते रहने की दृढ़ इच्छाशक्ति। लेकिन और बातों में होरी प्रेमचन्द से मिला है।"[7]

मेहता कथनी और करनी में अंतर के प्रबल विरोधी है। वे रायसाहब के दुरंगे चरित्र को निर्ममता से उधेड़ते है तथा खन्ना के दुरंगेपन को भी लताड़ते है। खन्ना का पत्नी गोविन्दी पर उनकी श्रद्धा है। जिसे वे आदर्श नारी का प्रतीक मानते हैं किन्तु उसकी वौद्धिक शक्ति से प्रभावित होते हैं।

प्रेम विवाह स्त्री पुरूष सम्बन्धों एवं नारी की अस्मिता और अधिकारों के बारे में मेहता के अपने विचार है। पश्चिम की नारी और नारी मुक्ति की पश्चिमी अवधारणाओं के वे विरोधी हैं।

मेहता मालती को खन्ना की असलियत से वाकिफ कर खन्ना से मालती को अलग कर खन्ना और गोविन्दी के दाम्पत्य को बिखरने से रोकना चाहते हैं। मालती जो मेहता की जीवन संगीनी बनने का निश्चय कर चुकी थी वह मेहता के विचारों से आशंकित हो उठती है। वह कहती है—तुमने मुझे सदैव परीक्षा की आँखों से देखा प्रेम की आँखों से नहीं...नारी परीक्षा नहीं चाहती प्रेम चाहती है— मैंने तुमसे प्रेम किया है मैं कल्पना भी नहीं कर सकती कि तुममें कोई बुराई भी है परन्तु तुमने मेरी परीक्षा ली।

मालती मेहता की वौद्धिकता और तेजस्व को जानकर उनकी ओर आकृष्ट हुयी थी मेहता में उसे अपना एक रक्षक दिखाई पड़ा था। वह अपने को मेहता के

आदर्शो के अनुरूप बनाते हुए अपना संस्कार करते हुए उस दिन की प्रतीक्षा कर रही थी जब वे दोनों एकात्म हो जायेंगे।

मेहता का चरित्र जितना रचा हुआ नहीं है उतना गढ़ा हुआ मालुम पड़ता है। अपने अनेक विचारों को सम्प्रेषित करने के लिए ही प्रेमचन्द ने उसकी उद्भावना की है।

प्रेमचन्द ने अपने विचार जगत की बिन्दु पर यह सीमा भी कही जा सकती है। किन्तु मालती और मेहता के अविवाहित दाम्पत्य उनका एक ही छत के नीचे मित्रवत एक दूसरे के प्रति सम्पूर्णतः समर्पित होकर रहना सदी के चौथे दशक में स्त्री पुरूष सम्बन्धों की एक नई उद्भावना माना जा सकता है।

धनिया :-

गोदान के नारी पात्रों में सबसे उभरा हुआ और सबसे महत्वपूर्ण पात्र होरी की पत्नी धनिया है। जैसे प्रेमचन्द ने खराद पर चढ़कर उसे गोदान में प्रस्तुत किया हो फिर भी नितांत स्वाभाविक कही से भी गढ़ा हुआ जैसा नहीं एक निश्छल स्वाभिमानी गृहिणी का चरित्र ।

उसके स्वाभाव का और उसकी सोच का जो परिचय हमें उपन्यास से मिलता है उससे सूचित होता है कि "उसमें बहुत कुछ विवाहोपरान्त होरी के साथ के उसके जीवन चक्र और स्थितियों के बीच से उपजे अनुभवों के रूप में उसको अर्जित है। तो ऐसा भी थोड़ा कुछ है जो वंशानुगत उसके संस्कारों के रूप में उसके रक्त में घुल-मिलकर आया है। "[8]

विलक्षण रेखाओं से रचा गया धनिया का चरित्र है जो अपने अन्तरविरोधी गुणों में भी अन्ततः एक और अखण्ड है। उपन्यास की पहली पंक्ति में धनिया है और उसकी अंतिम पंक्ति में भी धनिया है। गोदान जितना होरी का उपन्यास है उतना ही धनिया का। वह जितना होरी की त्रासदी है उतना धनिया की त्रासदी भी। एक ग्यारह-बारह वर्ष की लड़की के रूप में उसने होरी के घर में प्रवेश किया था और 25 वर्षो के दाम्पत्य जीवन में ही वह बूढ़ी हो गयी थी। क्या मिला है उसे जिन्दगी के 35-40 साल जीवन के इस होमकुंड में जलाकर भस्म करके।

गोबर जब यह कहता है कि "मै उसे अपनी माता नहीं मानता। तो उसे ऐसा लगता है जैसे कोई उसके हृदय को आरे से चीर रहा हो उसका मातृत्व उस घर के समान हो रहा था जिसमें आग लग गई हो और सब कुछ जलकर राख हो गया हो

बैठकर रोने के लिए भी जगह न हो। वह शहरी जीवन और बाहरी परिस्थितियों दुहरे चक्र में पीसी है और पिसती है-शहरी जीवन और बाहरी परिस्थितियों के चक्र में पति के पौरूष से आहत होती हुयी अततः पुत्र की भर्त्सना और निष्ठुरता से क्षत-विक्षत होती हुयी।

धनिया के चरित्र में विद्रोह के जिस सामजंस्य की बात हमने कही है समूचे उपन्यास में इसके साक्ष्य है। वह स्वभाव से प्रखर है अनीति और अन्याय, अकारण की चापलूसी, खुशामद और समझौता परस्ती उसे बर्दाश्त नहीं।

होरी के जिन भाइयों को संयुक्त परिवार में उसने अपने समूचे अन्तःकरण से पाला-पोसा और बड़ा किया जिनकी बहुओं की डोली उसने अपने घर पर उतारी अलगौझा कर के उससे अलग रहकर यदि उस पर तोहमतें लगाए होरी भले बर्दाश्त करे उसके बर्दाश्त के बाहर है।

हीरा के गाय के विष देने के अपराध को वह होरी के मना करने पर भी सरेआम कहती है और सरेआम की जाने वाली मारपीट और अपनी बेइज्जती के बावजूद अंत तक कहती रहती है। "हीरा के घर में तलाशी रोकने के लिए होरी के प्रयास पर लानत देते हुए रिश्वत के पैसे दरोगा के सामने से छीन लेती है। उसके चण्डी रूप को प्रेमचन्द ने बड़ी सजीव रेखाओं में अंकित किया है। धनिया का यह स्वाभिमान उस भारतीय नारी के स्वाभिमान है जो पुरूष के प्रति समर्पित होकर भी अपनी अस्मिता बनाये रहती है।" वह श्रमजीवी नारी और आत्मनिर्भर नारी का स्वाभिमान है। झुनिया को घर में शरण देने को वह अपराध नहीं मानती।

स्वाभिमानी होने के साथ ही साथ धनिया सहज सरल तरल कोमल हृदय और करूर्णाद भी है। क्रोध के आरम्भिक आवेक से उबर झुनिया को अपनी बहु के रूप में सम्मान से घर में रखती है। झुनिया के बेटे के जन्म पर सोहर गाती है। बेटे बेटियों पर उसका सहज निश्छल प्रेम है। सोना का विवाह धूमधाम से करती है कर्ज ले कर भी बेटी को खाली हाथ नहीं दान दहेज देकर उसके घर भेजती है। रूपा के अनमेल विवाह को लाचार होकर स्वीकार करती है किन्तु उसे भरोसा है कि उसकी बेटी सुखी रहेगी गोबर के पुत्र पर अपने आशीर्वाद बिखेरती है। होरी को अपने अत्तः करण से चाहती है उसके लिए अपना सारा जीवन एक कर देती है। प्रेमचन्द बड़ी प्रभावी ढंग से होरी और धनिया के प्यार दुलार, हंसी-मसखरी के क्षणों को उद्घारित किया है। धनिया और होरी के बीच होने वाले वार्तालाप के कुछ अंश—"ओहो ! ऐसे ही तो बड़े दरद वाले हो। अभी तक मार का दाग बना हुआ है। हीरा मारता है तो

दुलारता भी है। तुमने खाली मारना सीखा। दुलार करना सीखा ही नहीं। मैं ही ऐसी हू कि तुम्हारे साथ विवाह हुआ।

अच्छा रहने दे, बहुत अपना बखान न कर। तू ही रूठकर नैहर भागती थी जब महिनो खुशामद करता था तब जाकर आती थी।

गोदान में होरी और धनिया की त्रासद कथा में प्यार दुलार मान मनुहार के ऐसे क्षण बहुत कम हैं किन्तु जो हैं वे होरी और धनिया की त्रासदी को और भी करूण और क्लेशदायक बनाते है।

मिस मालती :-

मालती धनिया के बाद गोदान की दूसरी प्रमुख नारी पात्र है जिसकी उपस्थिति गोदान की शहरी कथा को दिलचस्प बनाती है। प्रेमचन्द मालती का परिचय इस प्रकार कराते है—"दूसरी महिला जो ऊँची एंड़ी का सैडिल पहने हुए है और जिनकी मुख छवि पर हंसी फूटी पड़ती है मिस मालती है। आप इग्लैण्ड से डाक्टरी पढ़ आयी है और अब प्रेक्टिस करती है। आप नवयुग की साक्षात प्रतिमा है चपलता कूट-कूट कर भरी हुयी है झिंझक या संकोच का कहीं नाम नहीं मेकअप में प्रवीण, बलाकी हाजिर जवाब आमोद प्रमोद को जीवन का तत्व मानने वाली लुभाने और रिझाने की कला में निपुण। जहाँ आत्मा का स्थान है वहाँ प्रदर्शन जहाँ हृदय का स्थान है वहाँ हावभावमनोदूगारों पर कठोर निग्रह जिसमे इच्छा या अभिलाषा को लोप सा हो गया हो।"[10]

मालती का यह पहला परिचय उसे पाठकों की निगाह में पश्चिमी रंग में रंगी एक आधुनिका के रूप में पेश करता है।

पुरूषों की कमजोरियों से फायदा उठाकर मनोवांछित जिन्दगी मानो उसका एकमात्र लक्ष्य है। मालती अपने इसी रूप में स्थिर भी रहती है स्थितियों ने मालती को अपने ढंग जिन्दगी को समझना और जीना सीखाया है। वह पुरूषों को उकसाती जरूर है उसका साधन नहीं बनती उन्हें अपने आकर्षक पाश में फंसाये जरूर रखती है उसके जाल में फंसती नहीं।

धनुषयज्ञ के अवसर पर शिकार प्रसंग में वह मेहता के काफी करीब आती है। दोनों एक दूसरे को चाहते परखते है, आकर्षित आंशकित होते है। उनका नैरक्य बढ़ता जाता है। मेहता के अनेक विचारों से प्रेम विवाह नारी मुक्ति आदि से उनकी वैद्धिक प्रतिभा से प्रभावित होती है।

मेहता की प्रेरणा से अपने को मेहता की परिकल्पना के अनुरूप ढ़ालने की उसकी चेष्टा उसमें बदलाव लाती है उसमें सेवा भाव का उदय होता है। गोबर और झुनिया को अपने घर रखती है और गोबर के पुत्र मंगल को अपना नारी शुलभ वात्सल्य देती है। मेहता के साथ बेलारी जाकर रात-भर होरी के घर परिवार के साथ रहती है। ग्रामीण महिलाओं को स्वास्थ्य सम्बन्धी जानकारी देती है। मालती का एक रूप वह है जो उद्घाषित है और एक वह है जो वास्तविक है प्रेमचन्द ने उसे भी स्पष्ट किया है। मालती बाहर से तितली है, भीतर से मधुमख्खी उसके जीवन में हँसी ही हँसी नहीं है... वह हँसती है इसलिए कि उसे इसके भी दाम मिलते हैं..... वह इसलिए चहकती है और विनोद करती है कि इससे उसके कर्तव्य का भार कुछ हल्का हो जाता है।

शराब का व्यसन पाले और फालिज मारे उसका एक बाप भी है दो जवान बहनें जिनकी परवरिश और रक्षा का भार उस पर ही है। जितनी योग्यता रूप और समझदारी उसमें है वह मनोवांछित जीवन बसर कर सकती थी उसने विवाह कर अलग घर नहीं बसाया अपनी जीवन चर्या को खास तरह का बनाया तो इसलिए कि जो उस पर आश्रित है उनके प्रति उत्तरदायित्वों का निर्वाह कर सके उन सम्बन्धों को सार्थक बनाये रहे जो बुनियादी मानवीय सम्बन्ध है। इस दृष्टि से मालती पश्चिमी रंग में रंगी आधुनिक नहीं परम्परांगत सम्बन्धों और मानवीय मूल्यों पर आस्था रखने वाली उन्हें बनाये और टिकाये रखने वाली एक संस्कारी नवयुवती है।

"मालती जिस समाज में विचरण करती है उस समाज के लोलुप पुरूष वर्ग की वासना से अपने को उसी तरह रहकर बचा सकती थी जिस तरह का जीवन वह उनके बीच जीती है। मेहता से वह स्वतः अपने बाहय जीवन की विवशताओं का खुलासा करती है वास्तविक जीवन से उपजा मालती का यह चरित्र ही उसका बुनियादी चरित्र है । "[11]

मेहता जब मालती को परख कर और पहचान कर उसे अपने जीवन के केन्द्र में लाना चाहते है तब मेहता के प्रस्ताव पर संयत स्वरों में वह निवेदन करती है —मैंने नदी के तट वाली तुम्हारी बातें गाँठ बाँध ली दुख यही हुआ कि तुमने भी मुझे वही समझा जो कोई दूसरा पुरूष समझता, जिसकी मुझे तुम से आशा न थी। उसका दायित्व मेरे ऊपर है, यह मैं जानती हूँ, लेकिन तुम्हारा अमूल्य प्रेम पाकर भी मैं वही बनी रहूँगी ऐसा समझकर तुमने मेरे साथ अन्याय किया...तुम्हारा प्रेम और

विश्वास पाकर अब मेरे लिए कुछ भी शेष नहीं रह गया है यह वरदान जीवन को सार्थक कर देने के लिए काफी है।

मालती और मेहता के चरित्रों का यह रूपान्तरण प्रेमचन्द के अपने मनुष्यादर्श का प्रतिरूप है जीवन के यथार्थ के प्रति उनकी अनुरक्ति मनुष्यता की उनकी आदर्श परिकल्पनाओं से संगति बिठाकर चली है।

गोविन्दी :-

गोविन्दी मिल मालिक खन्ना की धर्मपत्नी है संस्कारशील और शिक्षिता। अपने पति के व्यवहार से आहत भी है क्योंकि खन्ना अपनी जीवन संगिनी का मान न देकर पराई स्त्रियों के प्रति अपने लोलुप आकर्षण का जाल फेंकते रहते है। गोविन्दी के आत्म-सम्मान के लिए यह असहय है। मेहता गोविन्दी के गाम्भीर्य, बुद्धि, घरपरिवार, के प्रति उसके समर्पण और उसकी सहिष्णुता की कद्र करते है। गोविन्दी में उन्हें एक आदर्शनारी का रूप दिखाई पड़ती है जिसके प्रति उसके मन में पूजा के भाव है।

अपनी व्यथा को जब तब गोविन्दी कविताओं में व्यक्त करती है खन्ना जिसका मजाक उड़ाते है। वह एक शांत समरस जीवन की आकांक्षी है। खन्ना उसके इस स्वप्न को क्षत-विक्षत कर देते हैं। बीमार बच्चे को डॉक्टर को दिखाकर वह आत्मलीन हो उठी। जिस विपत्ति की कल्पना वह कर रही थी आज वह उसके सिर पर आ गयी खन्ना ने आज जैसे उससे नाता ही तोड़ लिया। उसका नारीत्व आहत होता है और वह बच्चे को लेकर सदा-सदा के लिए खन्ना का घर छोड़कर चल देती है। मेहता से उसकी आकस्मिक भेंट होती है। मेहता उसके स्वत्व से उसके वास्तविक स्वरूप से उसके दायित्व से नये सिरे से परिचय कराते हैं। गोविन्दी के यह कहने पर कि माता के अतिरिक्त वह एक नारी भी है और उसे नारी का स्वरूप भी तो चाहिए, मेहता कहते है— "नारी केवल माता है और इसके उपरान्त जो कुछ है वह सब मातृत्व का उपक्रम है मातृत्व संसार की सबसे बड़ी तपस्या सबसे बड़ा त्याग और सबसे महान विजय है।"[12] गोविन्दी मेहता की प्रेरणा से घर लौट आती है। मालती से खन्ना का मोह भंग होता है। गोविन्दी अब उनकी अवमानना की पात्र नहीं थी। वह उससे आवश्यक परामर्श लेते हैं। मालती और गोविन्दी के चरित्रों को एक दूसरे की स्पर्धा में रखकर प्रेमचन्द ने दोनों की दुर्बलताओं को उभारा है दोनों चरित्रों के शून्यों को भरा है।

गोदान के अन्य पात्र :-

मिल मालिक खन्ना गोदान के प्रमुख पात्रों में से एक हैं स्वतंत्रता आन्दोलन में एक बार जेल जाकर यशस्वी हो चुके हैं। रायसाहब के अच्छे मित्र भी हैं। उनका विश्वास 'बिजनेस इज बिजनेस' के सिद्धान्त पर है। वे बैंकों के डाइरेक्टर भी है। उनके दो मुँहेपन को उजागर करते हुए मेहता कहते हैं—आपके मजूर विलो में रहते है, गंदे बदबूदार विलों में, जहाँ आप एक मिनट भी रह जायें तो आपको कै हो जायेगा। कपड़े, जो वे पहनते हैं उनसे आप अपने जूते भी न पोछेंगे खाना, वह जो खाते हैं आपका कुत्ता भी न खाएगा।

खन्ना का चरित्र मेहता की ही तरह उपन्यास में सप्रयोजन लाया गया चरित्र है। "उसके माध्यम से प्रेमचन्द अपने समय की उस लिखावट को प्रत्यक्ष करते हैं जो रायसाहब जैसे सामन्ती व्यवस्था के अलवरदारों को अप्रांसगिक बनाती हुयी खन्ना जैसे उद्योगपतियों और उनके माध्यम से एक नई औद्योगिक पूँजीवादी के रूप उभर रही थी।"[13]

एक अन्य पात्र है पं० ओंकारनाथ जो रायसाहब का मित्र है। निर्भीकता, सच्चाई, ईमानदारी और सिद्धान्तों पर अटल रहने की डींग मारने वाले राष्ट्रसेवा के व्रती हर प्रकार की समझौतावादीता को लानत मानने वाले पं० ओंकारनाथ अपने पत्र में विदेशी कम्पनियों के विज्ञापन छापने में परहेज नहीं करते। यही सिद्धान्तवादी पं० ओंकारनाथ अपने पत्र में रायसाहब के खिलाफ आयी हुयी चिट्ठी को इस प्रलोभन पर छापना रोक देते है।

वे उनके पत्र के सौ स्थायी ग्राहकों का नकद चंदा उन्हें खुद देंगे। संपादक ओकारनाथ की भूमिका गोदान में सीमित है। उनके रूप में प्रेमचन्द ने एक ऐसे संपादक रचा है जो सिद्धान्त और समझौते के बीच झूलता रहता है ।

श्याम बिहारी तंखा मूलतः दलाल है जो बड़े लोगों से रासपाट रख उनसे समझौता करते बिगाड़ते मुख्यतः दलाली का पैसा खाते है। नगर संस्कृति की लाभ-लोभ वाली मनोवृत्ति और मूल्यहीनता उनके चरित्र में उजागर होती है ।

नगर पात्रों में दिलचस्प व्यक्ति मिर्जा खुर्शेद हैं गोदान के अकेले मुसलमान पात्र वही हैं किन्तु उपन्यास में उन्हें मुसलमान के रूप में नहीं एक बहिर्मुखी खुले मन वाले खुशमिजाज व्यक्ति के रूप में उतारा गया है। वह राजनीति में डेमोक्रेसी हो समाज सुधार में नारी के अधिकारों तथा हैसियत का सवाल हो। बड़े मीठे तरीके से

वे छदम् को उभारते और बेनकाब करते हैं। कभी लाखों के आदमी थे कभी इस हद तक बदहाल हो जाते हैं कि शराब के लिए गोबर से दो रूपए उधार मांगते है। टिकट लगाकर मजदूरों की कबड्डी कराते हैं। उनका खुलापन, उनकी मस्ती, हँसमुख स्वभाव उनकी हाजिर जबाबी उनकी कमजोरियों को बहुत हद तक ढक लेती है ।

अन्य पात्रों में झुनिया का नाम प्रमुख रूप से लिया जा सकता है जिसके सहारे प्रेमचन्द ने इस उपन्यास के कथाक्षेत्र को सुदृढ़ किया है।

ग्रामीण पात्रों में गोबर की झुनिया ही गांव और शहर दोनों को नापती है। झुनिया के चरित्र की रेखाएं प्रेमचन्द ने स्थितियों से उपजे यथार्थ से रची है। एक पात्र है चुहिया जो गोबर से प्रताड़ित झुनिया आलम्बन देती है। झुनिया के उपरान्त एक पात्र के रूप में सीलिया का नाम लिया जा सकता है। वह अपनी बिरादरी से हटकर मातादीन के कपट आचरण की लपेट में आ जाती है किन्तु अपनी इच्छाशक्ति और एकानिष्ठता साहस के द्वारा मातादीन की लम्पटता को प्यार में बदल देती है।

कुछ अन्य पात्र हैं जैसे सोना, रूपा आदि। सोना और रूपा के चरित्र में उनके मां-बाप के संस्कारों की छाप है। सोना में तेज है रूपा में प्रशान्ति सोना आवेग प्रधान है और रूपा स्थिर। ये सारे ग्रामीण पात्र ग्रामीण जीवन की यथार्थ का हिस्सा है। बड़ी सजीव ढंग से गोदान में अंकित हुए है।

'समग्रत : गोदान की चरित्र सृष्टि और चित्रांकन दोनों में प्रेमचन्द की रचनात्मक क्षमता, मनुष्य के अंतरंग बाहिरंग की उनकी पहचान यथार्थ की संगति में जीवन भर सहेजे गये अनुभव उनका देखा भोगा सच, समय की लिखावट के अनुरूप उनका रचना और विचारगत व्यवहार सबका सम्मिलित योग है।"[14]

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

1. गोदान प्रेमचन्द, पृष्ठ संख्या- 11
2. प्रेमचन्द की विरासत और गोदान : शिवकुमार मिश्र, पृष्ठ संख्या-54
3. गोदान, प्रेमचन्द, पृष्ठ संख्या-16
4. प्रेमचन्द की विरासत और गोदान, शिव कुमार मिश्र, पृष्ठ संख्या-56
5. गोदान, प्रेमचन्द, पृष्ठ संख्या-308
6. प्रेमचन्द की विरासत और गोदान, शिव कुमार मिश्र, पृष्ठ संख्या – 58

7. प्रेमचन्द की विरासत और गोदान, शिवकुमार मिश्र, पृष्ठ संख्या – 60
8. प्रेमचन्द की विरासत और गोदान, शिवकुमार मिश्र, पृष्ठ संख्या – 64
9. प्रेमचन्द की विरासत और गोदान, शिवकुमार मिश्र, पृष्ठ संख्या – 65
10. गोदान, प्रेमचन्द, पृष्ठ संख्या – 48
11. प्रेमचन्द की विरासत और गोदान, शिवकुमार मिश्र, पृष्ठ संख्या – 70
12. गोदान प्रेमचन्द, पृष्ठ संख्या-165
13. प्रेमचन्द की विरासत और गोदान, शिवकुमार मिश्र, पृष्ठ संख्या-63
14. प्रेमचन्द की विरासत और गोदान, शिवकुमार मिश्र, पृष्ठ संख्या-73

ग्रामीण जीवन का सांस्कृतिक परिपार्श्व और गोदान

संस्कृति एक बहु प्रचलित और बहुआयामी शब्द है यह शब्द मानव सभ्यता के आन्तरिक विकास को सूचित करता है। मनुष्य अपनी जीवन यात्रा में जो कुछ श्रेष्ठ पाया वह सब संस्कृति बनकर उसकी उपलब्धि का हिस्सा होता गया संस्कृति का सम्बन्ध संस्कार से है, और उसका क्षेत्र असीमित है। संस्कृति उदात्त मूल्यों का समुच्चय है वह एक ऐसा अधिष्ठान है जो मानव की समूची चेतना को ओजस्वी बनाता है। वह सम्पूर्ण जगत के साथ मानव का सम्बन्ध जोड़ती है। आचरण का संस्कार करने वाला धर्म विचार का संस्कार करने वाला दर्शन, भाव का संस्कार करने वाली ललित कलाएँ और हृदय को संस्कारित करने वाला साहित्य आदि संस्कृति के अंग है। अतः जहाँ भी संस्कार है वहां ललित कलाएँ है और हृदय को संस्कारित करने वाला साहित्य आदि संस्कृति सामाजिक अनुभव है। सामाजिक अनुभव को ही संस्कृति कहते है व्यक्तिगत अनुभव को नहीं व्यक्तिगत अनुभव सामाजिक अनुभव दर्पण के रूप में ही संस्कृति कहलाता है।

भारत गाँवों में बसता है। ग्राम्य संस्कृति ही उसकी मूल संस्कृति है। यह संस्कृति जहाँ प्राचीनता लिये हुए है वही उसमें कुछ विकृतिया भी आ गयी हैं। धर्म में पाखण्ड और रूढ़ियों तथा अंधविश्वासों का बाहुल्य, जीवन में जड़ता का प्रवेश मूल्यों का हीन हो जाना आदि ऐसी ही समस्याएँ है। वस्तुतः आजादी के पूर्व से ही भारतीय ग्राम मूल्य संक्रमण के दौरे से गुजर रहे है। मूल्यों का यह संक्रमण आजादी के बाद तो और अधिक तेज हो चुका है।

बदलते हुए परिवेश संस्कृति वह महत्वपूर्ण आधार है। जिसकी सहायता से सामाजिक परिवर्तन की समुचित विवेचना की जा सकती है। यह सच है कि संस्कृति एक जटिल तथ्य है लेकिन सामान्य रूप से कहा जा सकता है कि संस्कृति मानव-निर्मित पर्यावरण है। मनुष्य अपनी सामाजिक विरासत, अनुभवों और सीख से सम्बन्धित जितने भी भौतिक पदार्थो और विश्वासों से घिरा होता है, वह सभी उसकी

संस्कृति का अंग है। इस प्रकार—"हमारे रहने विचार करने, दिन-प्रतिदिन के कार्यों, कला, साहित्य, धर्म, मनोरंजन और आनन्द में संस्कृति हमारी प्रकृति की अभिव्यक्ति है।"[1]

दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि भौतिक और अभौतिक तथ्यों की वह जटिल सम्पूर्णता है जिसे व्यक्ति समाज का सदस्य होने के नाते प्राप्त करता है और जिसमें वह अपना सम्पूर्ण जीवन व्यतीत करता है।

संस्कृति में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होने, समाज की परिस्थितियों से अनुकूलन करने तथा समाज के सदस्यों की आवश्यकताओं को पूरा करने का गुण होता है। इस प्रकार नवीन पीढ़ियों की मनोवृत्तियों, आकांक्षाओं और आवश्यकताओं में परिवर्तन होने के साथ ही संस्कृति के रूप में भी कुछ परिवर्तन होता रहता है। संस्कृति में होने वाले अनेक परिवर्तन स्वयं इसकी प्रकृति में निहित होते है। कारण जो भी हो, जब कभी भी संस्कृति के किसी पक्ष को अथवा तत्व में कोई परिवर्तन होता है तो यह सामाजिक परिवर्तन उत्पन्न करने लगता है। वास्तविकता यह है कि यह संस्कृति ही है जिसके अनुसार हम खान-पान, वेश-भूषा, रहन-सहन, शिष्टाचार से सम्बन्धित विभिन्न संस्कृति विकसित करते है। एक विशेष व्यवस्था में रहना सीखते हैं तथा समाज में अपने लक्ष्यों और आकांक्षाओं का निर्धारण करते हैं। इसका तात्पर्य है कि समाज में व्यक्ति जिन मनोवृत्तियों, सामाजिक मूल्यों, विश्वासों, परम्पराओं, प्रथाओं, कलात्मक और साहित्य अभिरूचियों, नैतिकता सम्बन्धी विचारों तथा आदर्श नियमों में रह कर जीवन व्यतीत करता है, वे सभी विशेषताएँ संस्कृति का अंग होती हैं।

आज भी भारतीय ग्रामवासी आध्यत्मिक चेतना सम्पन्न है ये अतिथि का सत्कार करना पुण्य का कार्य समझते है। कमजोर की मदद करना वे अपना धर्म समझते हैं। भाईचारा और नैतिकता आज भी भारतीय ग्रामवासियों में है। परन्तु अशिक्षा और सदियों की गुलामी के कारण धर्म के कारण गाँव में कुछ विकृतियाँ भी पैदा हुई। आत्मावाद, जादू-टोना, बहुदेववाद, अंधविश्वास, भूत-प्रेतों में विश्वास, पाखण्ड आदि गाँव की जनता में धर्म के विकृति रूप है। धर्म के नाम पर ग्रामीणों को आज भी आसानी से ठगा जा सकता है। गाँव में धर्म के आड़ में भ्रष्टाचार, व्यभिचार पनपता है। मंदिरों में बैठने वाले महन्त, पुरोहित, पण्डा, पुजारी आदि धर्म के नाम पर ग्रामीणों को ठगते हैं। जनता को उपदेश देने वाले साधु संत भी पाखण्डी

होते हैं। गाँव की जनता में स्वर्ग प्राप्ति या मोक्ष की प्राप्ति की कामना अधिक रहती है। इसके लिए ग्रामीण व्यक्ति स्नान, ध्यान, पूजा-पाठ, व्रत-उपवास, तीर्थयात्रा और दान-पुण्य किया करते है। और अखण्ड रामायण, भागवत और सप्ताह भर कीर्तन का आयोजन करते है। ये भावनाएँ स्त्रियों में कुछ अधिक ही है। शिक्षा के प्रसार और यांत्रिकता ने भी धर्म पर प्रभाव डाला है। नयी पीढ़ी इन अंधविश्वासों से मुक्त हो रही है।

'गोदान' में प्रेमचन्द ग्रामीण समाज में व्याप्त रूढ़ियों और परम्पराओं का बड़ा व्यापक चित्रण किया है। परम्परायें चाहे सांस्कृतिक हो, उस समय का किसान उन्हें तोड़ने का साहस नहीं कर पाता था। 'गोदान' में चित्रित होरी एक प्रकार से रूढ़ियों का गुलाम है। जब गोबर झुनिया काण्ड को लेकर उन्हें बिरादरी से बाहर कर दिया जाता है तो चुपचाप वह दण्ड होरी सहन कर लेता है। जब धनिया पंचों द्वारा लगाये गये दण्ड को अस्वीकार करती है तो होरी उसमें कहता है कि हम बिरादरी से बाहर जाकर कुछ नहीं कर सकते धनिया को सम्बोधित करके कहता है कि—

"धनिया, तेरे पैरों पड़ता हूँ, चुप रह। हम सब बिरादरी के चाकर है, उसके बाहर नहीं जा सकते। वह जो डाँड़ लगाती है, उसे सिर झुकाकर मंजूर कर। नक्कू बनकर जीने से तो गले में फाँसी लगा लेना अच्छा है। आज मर जायें, तो बिरादरी ही तो इस मिट्टी को पार लगाएगी? बिरादरी ही तारेगी तो तरेंगे। पंचों, मुझे अपने जवान बेटे का मुँह देखना नसीब न हो, अगर मेरे पास खलिहान के अनाज के सिवा और कोई चीज हो। मैं बिरादरी से दगा न करूँगा। पंचों को मेरे बाल-बच्चों पर दया आए, तो उनकी कुछ परिवरिश करें, नहीं मुझे तो उनकी आज्ञा पालनी है। "[2]

'गोदान' में चित्रित किसानों की पुरानी पीढ़ी रूढ़ियों से बाहर नहीं निकल पा रही है। युवा पीढ़ी में इन रूढ़ियों को काटने का साहस आ गया है। गाँव का युवक गोबर जब शहर से लौटता है तो गाँव के साहुकारों के छक्के छुड़ा देता है और अधिक ब्याज लेने के लिए फटकारता है। पण्डित दातादीन से वह कहता है कि वह बैंक दर से ब्याज देगा। जब दातादीन उसे ब्राहमणत्व का वास्ता देते हैं तो होरी उनके जाल में फंस जाता है। होरी नीति नहीं छोड़ना चाहता है तो गोबर कहता है। बैंक वाले बारह आना सैकड़ा ब्याज लेते हैं तो अधिक एक रूपया ले लें तो होरी कहता है बेटा जब तक मैं जीता हूँ मुझे अपने रास्ते पर चलने दो जब मैं मर जाऊं तो तुम्हारी जो इच्छा हो वह करना। होरी को लगता है कि अगर ठाकुर बनिये के रूपये होते तो वह दबा सकता था परन्तु ब्राहमण के रूपये भला कैसे दबा सकते हैं।

रूपा के विवाह में होरी को विवश होकर रूपा के होने वाले पति रामसेवक से मदद लेनी पड़ती रामसेवक होरी से दो ही चार साल छोटा था। ऐसे आदमी से रूपा का विवाह करने का प्रस्ताव ही अपमान जनक था। जीवन में होरी बड़ी-बड़ी चोट सही थी, मगर यह चोट सबसे गहरी थी। आज उसके ऐसे दिन आ गये है कि—"उससे लड़की बेचने की बात कही जाती है। और उसमें इन्कार करने का साहस नहीं है। ग्लानि से उसका सिर झुक गया। पण्डित दातादीन होरी को अपने ईशारे से बुलाता है और अपने कमर से सौ-सौ के दो नोट निकाल कर देता है।"[3]

"होरी ने रूपये लिये तो उसका हाथ कांप रहा था, उसका सिर ऊपर न उठ सका, मुँह से एक शब्द न निकला, जैसे अपमान के अथाह गढ़े में गिर पड़ा है और गिरता चला जाता है। आज तीस साल तक जीवन से लड़ते रहने के बाद वह परास्त हुआ है और ऐसा परास्त हुआ है कि मानो उसको नगर के द्वार पर खड़ा कर दिया गया है और जो आता है, उसके मुँह पर थूक देता है। वह चिल्ला-चिल्लाकर कह रहा है, भाईयों मैं दया का पात्र हूँ। मैंने नहीं जाना जेठ का लू कैसी होती है और माघ की वर्षा कैसी होती है। इस देह को चीरकर देखो, इसमें कितना प्राण रह गया है, कितना जख्मों से चूर कितना ठोकरों से कुचला हुआ उससे पूछो, कभी तूने विश्राम के दर्शन किये, कभी तू छाँह में बैठा? उस पर यह अपमान ! और वह अब भी जीता है। कायर, लोभी, अधम उसका सारा विश्वास जो अगाध होकर स्थूल और अंधा हो गया था, मानो टुक-टुक उड़ गया है।[4]

होरी अपने जीवन में हमेशा कठिन परिश्रम करता रहा लेकिन उसे कभी भी सुख के दिन देखने को न मिले।

स्वाधीनता संग्राम राजनीतिक आन्दोलन के साथ ही, सुधारवादी और सांस्कृतिक आन्दोलन में भी व्यापक रूप से व्यक्त हो रहा था। यद्यपि नेता, सुधारक और संस्कृतिकर्मी परम्परा एवं धर्म की ओर से साम्राज्यवाद से लोहा ले रहे थे, फिर भी जनवादी राजनीतिक चेतना इस पंक से निकलने के लिए सामन्तवाद विरोधी शक्तियों के विकास पर निर्भर थे। ये शक्तियां दुर्बल थी। यही कारण था कि कांग्रेस के भीतर गरम दल और नरम दल दोनों अपनी-अपनी राजनीति में धर्म का इस्तेमाल अधिकाधिक करते जा रहे थे। सोवियत रूस की अक्टूबर क्रान्ति की सफलता के बाद जनवादी धर्म निरपेक्ष राजनीति के विकसित होने की संभावना दिखाई देने लगी।

महात्मा गांधी की राजनीति में धर्म और अंधविश्वास इतने घुल मिल गये थे कि दोनों का भेद देख पाना कठिन लगता है। यही कारण है कि आजादी के वर्षो बाद गाँधीवाद का सकारात्मक पक्ष तो लगभग नष्ट ही हो गया और जो नकारात्मक था, उसे धुर दक्षिणपंथी राजनीतिक दलों ने अपनी राजनीति में शामिल कर लिया है। आज का नाथूराम गोड़से गाँधीवादी समाजवाद की वकालत करता है, तो यह उसकी नासमझी नहीं है। गाँधी ने स्वयं को सनातनपंथी हिन्दू, गोरक्षक, वेद और मूर्तिपूजक बताया था। यही नहीं बिहार के भूचाल पर जैसे टिप्पणी की थी, उससे तो साधारण लोग भी चौक गये थे। उन्होने कहा था कि—"भूचाल मनुष्य के पापों पर ईश्वर का कोप है।"[5]

उनके इस वक्तव्य पर प्रेमचन्द ने अपना तीव्र प्रतिवाद व्यक्त किया। इससे स्पष्ट होता है कि वह राजनीति को विज्ञानसम्मत, मानववादी सिद्धान्तों पर आधारित देखना चाहते थे।

स्वाधीनता आन्दोलन में राजनीतिक दलों के सिद्धान्तों में छिपे उनके वर्ग-स्वार्थो को प्रेमचन्द ने अपनी दूरदृष्टि से देख लिया था। अंग्रेजी गुलामी से मुक्ति पाने के लिए, जब भी 'पूर्ण स्वतंत्रता' की मांग की जाती थी, भारतीय राजे-महाराजे और महाजन लोग बौखला उठते थे। क्योंकि अंग्रेजों की सहायता खत्म हो जाने पर भारतीय समाज में उन्हें अपनी खटिया खड़ी होती दिखाई देती थी। इस पर प्रेमचन्द ने लिखा है—"क्या इसका कारण यह है कि वे समझते है कि स्वराज्य की दशा में उन्हें बहुत कुछ दब कर रहना पड़ेगा? क्या यह लोग उस आवाज के भय से थरथरा रहे है? हमें तो ऐसा जान पड़ता है। वह अपने दिल मे समझ रहे है कि उनके हितों की रक्षा अंग्रेजी शासन में ही हो सकती है। स्वराज्य कभी उन्हें गरीबों को कुचलने और उनका रक्त चूसने नहीं देगा..... स्वाराज्य गरीबों की आवाज है, डोमीनियन गरीबों की कमाई पर मोटे होने वालों की।"[6]

सामन्ती-पूँजीवादी गंठजोड़ के अंकूर को प्रेमचन्द ने अपने समय में ही बड़ी स्पष्टता से देख लिया था और अपने साहित्य में उसे बेझिझक प्रतिबिम्बित किया था। इस निष्कर्ष के बाद, सबसे आधुनिक और जनवादी राजनीतिक व्यवस्था की ओर सामाजवादी व्यवस्था की ओर तत्काल आगे बढ़ने से उन्हें कोई रोक नहीं सकता था। किसानों, मजदूरों और दलितों के प्रति गहरी सहानुभूति होने के कारण, उनके एक राजनीतिक संगठन की जरूरत को वे गहराई से अनुभव करते रहे, उनके

समय में जब कभी ऐसा प्रयास किया भी गया तो, उन्होने यह भी देखा कि सामन्ती-पूँजीवादी वर्ग के लोग उस पर तत्काल हमला करने को तैयार हो जाते हैं। प्रेमचन्द ने पूरी शक्ति से गरीबों का पक्ष लिया और शासकों की कड़ी आलोचना की— "अंग्रेजी राज्य में गरीबो, मजदूरों और किसानों की दशा जितनी खराब है और होती जा रही है, उतनी समाज के किसी और अंग की नहीं। कांग्रेस के मेम्बर या और लोग भी कभी-कभी न्याय और नीति के नाते भले ही किसानों की वकालत करें, लेकिन किसानों के नाना प्रकार के दुखों और वेदनाओं की उन्हें अखर नहीं हो सकती जो एक किसान को हो सकती है उनकी शक्ति बिखरी हुयी है। अगर उन्हें संगठित करने की कोशिश की जाती है तो सरकार, जमींदार, सरकारी मुलाजिम और महाजन सभी भन्ना उठते हैं। चारों ओर हायतौबा मच जाती है, बोल्शेविज्म का हौवा बताकर कुछ आन्दोलन को जड़ से खोदकर फेंक दिया जाता है।"[7] उनके ऐसे राजनीतिक विचार, जिनमें से कुछेक अनुच्छेद ही यहां उद्धृत किये गये है, उनके उपन्यासों में पात्रों के व्यवहारों और विचारों में बिम्ब बन गये हैं। कर्मभूमि, रंगभूमि, गबन और गोदान की संरचनाओं में स्थितियों और चरित्रों का विकास परस्पर-विरोधी स्वार्थो की इसी टकराहट से होता है। उनके कुछेक उपन्यासों में केन्द्रीय चरित्र जहां तत्कालीन राजनेताओं के प्रतिबिम्बि बन गये है, वहां 'गोदान' में चरित्र अपने-अपने वर्गो के प्रतिनिधि के रूप में प्रस्तुत होते हैं। इसके चरित्र आदर्शो और विचारों को ढ़ोने वाले यांत्रिक वाहन न होकर, यथार्थ के प्रतिबिम्ब बन जाते है। इसके प्रमुख पात्र होरी, धनिया, गोबर, रायसाहब, मेहता, मालती आदि।

'गोदान' की कथावस्तु भी 'होरी' नामक किसान के चारों ओर सर्पिल गति से विकसित होती है। तत्कालीन राजनीति में सामंती और महाजनी तत्वों की प्रबलता थी और इसी वर्ग के लोग कांग्रेस के नेता थे। दैनिक जीवन, सामाजिक सम्बन्धों और नैतिक विश्वासों में उनकी राजनीति की असलियत कैसी थी, इसे गोदान के केन्द्रीय पात्र होरी के चरित्र के माध्यम से प्रतिबिम्ब किया गया है। इस तरह, इस उपन्यास में राजनीति प्रत्यक्षीकरण का रूप न होकर, सौन्दर्य-बोध की वस्तु बन गयी है।

होरी कर्ज से लदा हुआ है पैसे के अभाव में वह समय पर लगान भी नहीं चुका पाता है। और वह गोबर और रूपा का ब्याह भी नहीं कर पाता है जाड़े के दिनों में तार-तार हुए कम्बल और फटी हुयी मिर्जई के सहारे रात काटता है। पत्नी धनिया

और बेटी सोना की साड़ियां 'कथरी' हो गयी है। पंचायत का दण्ड चुकाने के बाद होरी की अवस्था इतनी दयनीय हो जाती है। इसका पता निम्न पंक्तियों से चलता है—"बैशाख तो किसी तरह कटा, मगर जेठ लगते-लगते घर में अनाज का एक दाना न रहा। पांच-पांच पेट खाने वाले और घर में अनाज नदारद। दोनों जून न मिले, एक जून तो मिलना ही चाहिए। भर पेट न मिले, आधा पेट तो मिले। निराहार कोई कै दिन रह सकता है? उधार ले तो किससे? गाँव के छोटे-बड़े महाजनों से तो मुँह चुराना पड़ता था। मजूरी भी करे, तो किसकी? जेठ में अपना ही काम ढेरों था। ऊख की सिंचाई लगी हुयी थी, लेकिन खाली पेट मेहनत भी कैसे हो।"[८] दवा दारू के अभाव में उसके तीन लड़के बचपन ही में मर गये। उसकी पत्नी धनिया पेट की चिंता के कारण छत्तीस वर्ष की अवस्था में ही बूढ़ी जान पड़ती है। स्वयं उसका स्वास्थ्य भी चिंताजनक है उसे घी, दूध मयस्सर नहीं होता। उसका बेटा गोबर दूध के लिए तरस कर रह जाता है। एक जगह धनिया पटेश्वरी से कहती है। आजकल हमारे ऊपर जो बीत रही। वह क्या तुमसे छिपा है। महीनों से भर पेट रोटी नसीब नहीं हुयी।

होरी की महत्वाकांक्षा, एक साधारण किसान की महत्वाकांक्षा है। वह चाहता है कि उसके पास एक गाय होती। इस महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए वह आजीवन संघर्ष करता है। वह चाहता है कि उसके लड़के दूध पीये उसके द्वार की शोभा बढ़े, और गाय की सेवा करके वह पुण्य लाभ करे। प्रेमचन्द के अनुसार गऊ उसके लिए केवल श्रद्धा की वस्तु नहीं, सजीव सम्पत्ति भी थी वह उससे अपने द्वार की शोभा और अपने घर का गौरव बढ़ाना चाहता था। होरी जैसे किसान के लिए यह महत्वाकांक्षा नहीं तो क्या है? क्योंकि तत्कालीन परिस्थितियों में जकड़े किसान के लिए एक गाय की व्यवस्था करना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य था। होरी की महत्वाकांक्षा अपनी साधारणता में अद्वितीय है। जैसा साधारण होरी का व्यक्तित्व है वैसी ही साधारण उसकी महत्वाकांक्षा है। वह महज एक गाय प्राप्त करना चाहता है। पर इस शोषण पूर्ण समाज व्यवस्था में होरी जैसे किसान के लिए गाय ही दुर्लभ वस्तु है।

गोदान में प्रेमचन्द ने कबड्डी जैसे खेल का भी वर्णन बड़ी सजीव ढंग से किया है— "जरा इन बूढ़े बाबा को देखो! किस शान से जा रहे है, जैसे सबको मारकर ही लौटेंगे। अच्छा, दूसरी तरफ से भी उन्हीं के बड़े भाई निकले। दोनों कैसे

पैतरे बदल रहे है! इन हड्डियों में अभी बहुत जान है । इन लोगों ने जितना घी खाया है, उतना अब हमें पानी भी मयस्सर नहीं। लोग कहते है, भारत धनी हो रहा है। होता होगा। हम तो यही देखते हैं कि इन बुढ्ढों जैसे जीवट के जवान भी आज मुश्किल से निकलेंगे। वह उधर वाले बुढ्ढे ने इसे दबोच लिया। बेचारा छूट निकलने के लिए कितना जोर मार रहा है। मगर अब नहीं जा सकते बच्चा! एक को तीन लिपट गए। इस तरह लोग अपनी दिलचस्पी जाहिर कर रहे थे। उनका सारा ध्यान मैदान की ओर था।"[9]

मिर्जा ने इस कबड्डी खेल में गोबर को नहीं रखा उसे पौधे सींचने के काम में लगा दिया। गाँवों में साल भर में दो या तीन बार किसी न किसी उत्सव या त्यौहार में ढोल-मजीरा बजता है। होली के एक महीना पहले से और होली के एक महीना बाद तक फाग होता रहता है चैत आते ही चैता शुरू हो जाती है। आषाढ़ लगते ही आल्हा शुरू हो जाता है और सावन-भादों में कजलियाँ होती है। कजलियों के बाद रामायण-गान होने लगता है। होली जैसे त्यौहार के अवसर पर महाजन की धमकियाँ और कारिन्दे की बोलियाँ इस समारोह में बाधा नहीं डाल सकती। घर में अनाज हो या न हो, शरीर पर कपड़ा हो या न हो, जेब में पैसा हो या न हो कोई परवाह नहीं। होली के अवसर पर जीवन की आनन्दवृत्ति तो दबाई नहीं जा सकती हँसे बिना तो जिया नहीं जा सकता।

वैसे होली में गाने बजाने का कार्य मुख्यतः नोखेराम के चौपाल में ही होता था। वही भंग बनती थी, वही रंग उड़ता था। वही नाच होता था। इस उत्सव में कारिन्दा साहब के दस-पांच रूपए खर्च हो जाते थे। और किसमें यह सामर्थ्य थी कि अपने द्वार पर जलसा कराता। लेकिन होली के इस अवसर पर इस बार नोखेराम के चौपाल में जलसा न होकर गोबर के द्वार पर हुआ गोबर ने सभी नवयुवकों को अपने द्वार पर खींच लाया। और नोखेराम का चौपाल खाली पड़ गयी। गोबर अपने द्वार पर भांग को पिसवा रहा है। पान के बीड़े लग रहे है, रंग घोला जा रहा है। जाजीम बिछा हुआ है, गाना हो रहा है, उधर नोखेराम के चौपाल में सन्नाटा छाया हुआ है। भंग भी रखी हुई है, पीसे कौन? ढोल-मजीरा सब मौजूद है, पर गाये कौन? जिसे देखो, गोबर के द्वार की ओर दौड़ा चला जा रहा है। यहाँ भंग में गुलाब जल और केसर और बादाम की बहार है। गोबर खुद एक किलो बादाम लाया था। पीते ही चोला तर हो जाता है, आँखे खुल जाती है, गोबर ने जितने गाने वाले थे उनको केवल भंग ही

नहीं पिलाया बल्कि नेवता भी दिया था। गाँव में न गाने वालों की कमी है और न नाचने वालो की कमी है। और न अभीनय करने वालो की कमी है—" शोभा ही लगड़ो की ऐसी नकल करता है कि क्या कोई करेगा और बोली की नकल करने में तो उसका सानी नहीं है। जिसकी बोली कहो उसकी बोली-आदमी की भी, जानवर की भी। गिरधर नकल करने में बेजोड़ है। वकील की नकल वह करे, पटवारी की नकल वह करे, थानेदार की, चपरासी की, सेठ की.... सभी की नकल कर सकता है।"[10]

यह चर्चा इतनी फैली की साँझ से ही तमाशा देखने वाले जमा होने लगे। आस-पास के गाँवों से दर्शकों की टोलियाँ आने लगीं। दस बजते- बजते तीन-चार हजार आदमी जमा हो गए। और जब गिरधर झिंगुरीसिंह का रूप धरे अपनी मण्डली के साथ खड़ा हुआ तो लोगों को खड़े होने की जगह भी न मिलती थी। वही खल्वाट सिर, वही बड़ी मूछें, और वही निकला हुआ तोंद ! झिंगुरीसिंह बैठे भोजन कर रहे है, और पहली ठकुराइन बैठी पंखा डोला रही है। ठाकुर झिंगुरीसिंह अपने रसिक नेत्रों से देखकर कहते हैं—"अब भी तुम्हारे ऊपर वह जोबन है कि कोई जबान भी देख ले तो तड़प जाय।"[11] तब ठाकुराइन फूलकर कहती है, तभी तो नयी नवेली लायें तब ठाकुर झिंगुरीसिंह कहता है उसे तो तुम्हारी सेवा के लिए लाया हूँ। वह तुम्हारी क्या बराबरी करेगी झिंगुरीसिंह के इस बात को उसकी छोटी बीबी सुन लेती है और मुँह फुलाकर चली जाती है। दूसरे दृश्य में ठाकुर खाट पर लेटे है और छोटी बहू मुँह फेरे हुए जमीन पर बैठी है। ठाकुर बार-बार उसका मुँह अपनी ओर फेरने की विफल चेष्टा करके कहते हैं। मुझ से क्यों रूठी हो मेरी लाड़ली? उसकी छोटी बीबी कहती है 'तुम्हारी लाड़ली जहाँ हो, वहाँ जाओं मैं तो नौकर हूँ, दूसरों की सेवा करने के लिए आयी हूँ। तब झिंगुरीसिंह कहता है, तुम मेरी रानी हो ! तुम्हारी सेवा के लिए वह बुढ़िया है। पहली ठाकुराइन बात सुन लेती है और झाड़ू लेकर घर में घुसती है और कई झाड़ू उन पर जमाती है। ठाकुर साहब जान बचाकर भागते हैं। इसी तरह नाटक में बारी-बारी से नोखेराम और पटेश्वरी और दातादीन की नकल की गयी हैं इसी प्रकार का हास्यजनक ढंग से गाँव के लोग होली का मजा ले रहे है।

जिस प्रकार हमें अपनी आजादी और अपने सुख की चिंता है, उसी प्रकार हमें स्त्रियों की भी चिंता करनी होगी। उन्हें इस स्थिति में पहुँचना होगा कि वे स्वयं अपनी चिंता कर सकें। इसके लिए प्रेमचन्द स्त्री की शिक्षा को बहुत जरूरी मानते

थे। दहेज के प्रसंग में लिखते हुए अपने एक लेख में उन्होंने लिखा कि हमें तो इसका एक ही इलाज नजर आता है और वह यह कि लड़कियों को अच्छी शिक्षा दी जाए और उन्हें संसार में अपना रास्ता आप बनाने के लिए छोड़ दिया जाय, उसी तरह जैसे हम अपने लड़कों को छोड़ देते है। उनको विवाहित देखने का मोह हमें छोड़ देना चाहिए और युवकों के विषय में उनके विवाहित देखने का मोह हमें छोड़ देना चाहिए और जैसे युवकों के विषय में उनके पथभ्रष्ट हो जाने की परवाह नहीं करते, उसी प्रकार तो हमें लड़कियों पर भी विश्वास करना चाहिए यहाँ बिल्कुल साफ है एक तो दहेज जैसी अमानवीय प्रथा से उत्पन्न क्षोभ और उसको सदा के लिए समाप्त करने का संकल्प-मार्ग, और दूसरा सदियों से पुरूष स्त्री को सिर्फ घर के भीतर रहने वाली चीज के रूप में देखते और उनकी शारीरिक कमजोरी का बहाना करते रहे है। पुरूष को सदा से लगता है कि स्त्री अबला है। वह कोमलांगी होती है। बाहर का संसार उसके लिए ठीक नहीं होता है।

प्रेमचन्द स्त्रियों को इस 'बन्दीगृह' से बाहर करने और खुले आसमान के नीचे उन्हें उन्हीं की शर्तो पर स्वच्छन्द विचरण करने देने की वकालत करते हैं। वे अच्छी तरह जानते थे कि उनके समय में या आगे आने वाले समय में मनुष्यता का यही तकाजा है। उन्होनं अपने कालजयी उपन्यास 'गोदान' में सरोज के मुँह से कहलवाया है।

"हम पुरूषों से सलाह नहीं माँगती। अगर वह अपने बारे में स्वतंत्र है, तो स्त्रियाँ भी अपने बारे में स्वतंत्र है। युवतियाँ अब विवाह का पेशा नहीं करना चाहतीं। वह केवल प्रेम के आधार पर विवाह करेंगी। "[12].आखिर बिना इच्छा के, बिना प्रेम के देह कब तक दुही जाएगी। गोदान की झुनिया अपने प्रेम की शुरूआत में ही कहती है....." मर्द दूसरी औरत के पीछे दौड़ेगा तो औरत भी जरूर मर्दो के पीछे दौड़ेगी। मर्द का हरजाईपन औरत को उतना ही बुरा लगता है, जितना औरत का मर्द को। यही समझ लो। मैंने तो अपने आदमी से साफ-साफ कह दिया था, अगर तुम इधर-उधर लपके, तो मेरी भी जो इच्छा होगी, वही करूँगी।" [13] प्रेमचन्द युग में विधवाओं की बड़ी दयनीय दशा थी। एक तो स्त्री, ऊपर से विधवा भी। बेचारी ऐसी स्त्री पर दुःख का पहाड़ टूट पड़ता था। अपने को सभ्य कहने वाले लोग अपने तानों से उस दुःखी स्त्री का हृदय छलनी कर देते है। बहुत कुछ बदलने के बाद भी, आज भी यह समाज विधवाओं, खासकर युवावस्था में हुई विधवाओं, के प्रति सहानुभूति तो रखता

है, लेकिन सहानुभूति का व्यवहार नहीं करता। प्रेमचन्द का संवेदनशील हृदय स्त्री की सोचनीय दशा से बहुत आहत था।

भारतीय समाज में स्त्री की जो स्थिति रही है, वेश्या-समस्या उससे गहरे जुड़ी है। सभ्यता के लगभग आरभिंक दौर से किसी न किसी रूप में वेश्याओं की उपस्थिति भारतीय समाज में है। पुरूष वर्चस्व वाले इस समाज में स्त्री को सदा ही भोग की वस्तु समझा गया। आज भी ऐसे महानुभवों की कमी नहीं है, जो स्त्री को इसी रूप में देखते हैं। वेश्याएँ ऐसी ही दृष्टि के चरम का परिणाम है। वे सभी नगर वधू के रूप में आई, कभी देवदासियों के रूप में और अक्सर क्रय-विक्रय के संसार में एक ऐसी स्त्री के रूप में, जिसके पास जीने के लिए यह समाज कोई और मार्ग नहीं छोड़ता। प्रेमचन्द स्त्री की इस शोचनीय दशा पर गम्भीरता से विचार करते है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि प्रेमचन्द के स्त्री-विषयक दृष्टिकोण की अपनी कुछ सीमाएं है, फिर भी उनके समकालीनों में स्त्री के सम्बन्ध में उनसे प्रगतिशील नजरिया और किसी के पास नहीं दिखता। हिन्दी कथा साहित्य में वे पहले हैं जो स्त्रियों पर हो रहे जुल्मों-सितम का कड़ा विरोध करते है। उन्हें मनुष्य का दर्जा दिलाने के लिए लड़ते है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

1. सामाजिक नियंत्रण एवं परिवर्तन, डॉ. गोपाल कृष्ण अग्रवाल, पृष्ठ संख्या – 406
2. गोदान, प्रेमचन्द, पृष्ठ संख्या - 110
3. गोदान, प्रेमचन्द, पृष्ठ संख्या-300
4. गोदान, प्रेमचन्द, पृष्ठ संख्या – 305
5. गोदान की संरचना में राजनीति और साहित्य (लेख), नीलकांत, गोदान का महत्व (ग्रन्थ), सम्पादक डॉ. मिश्र सत्यप्रकाश पृष्ठ संख्या-150
6. गोदान की संरचना में राजनीति और साहित्य (लेख), नीलकांत, गोदान का महत्व (ग्रन्थ), सम्पादक डॉ० मि सत्यप्रकाश, पृष्ठ संख्या-150
7. गोदान की संरचना में राजनीति और साहित्य (लेख), नीलकांत, गोदान का महत्व (ग्रन्थ), सम्पादक डॉ. मिश्र सत्यप्रकाश, पृष्ठ संख्या-150
8. गोदान, प्रेमचन्द, पृष्ठ संख्या-127
9. गोदान, प्रेमचन्द, पृष्ठ संख्या-121-122

10. गोदान, प्रेमचन्द, पृष्ठ संख्या - 186
11. गोदान, प्रेमचन्द, पृष्ठ संख्या - 186
12. गोदान, प्रेमचन्द, पृष्ठ संख्या - 138
13. गोदान, प्रेमचन्द, पृष्ठ संख्या-138

उपसंहार

प्रख्यात उपन्यासकार मुंशी प्रेमचन्द का लेखन सन् 1900 ई. के आस-पास शुरू हुआ और 1936 तक अबाध गति से चलता रहा। प्रेमचन्द का प्रसिद्ध उपन्यास 'गोदान' 1936 में प्रकाशित हुआ। यह समय भारतीय समाज में स्त्रियों और दलितों के लिए दोहरी गुलामी का समय था। गोदान पढ़ने के बाद यह सहज ही कहा जा सकता है कि यह उपन्यास प्रेमचन्द की अनुपम कृति है। गोदान में समकालीन, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक और किसानों की समस्या को पुरजोर ढंग से प्रस्तुत किया गया है। गोदान में प्रेमचन्द का अन्तिम यथार्थवादी दृष्टिकोण प्रकट हुआ है। गोदान का मुख्य केन्द्रीय विषय है जमींदारों, महाजनों और सरकारी आमलों के फलस्वरूप दयनीय जिन्दगी जीने वाला भारतीय किसान जिसका प्रतिनिधित्व होरी और उसका परिवार करता है। होरी बेलारी गाँव का साधारण किसान है। वह सच्चे अर्थो में एक साधारण किसान है, हर दृष्टि से साधारण आर्थिक, सामाजिक, शैक्षिक, मानसिक और नैतिक किसी भी दृष्टि से विशिष्ट नहीं है। आर्थिक दृष्टि से वह निम्न वर्ग का सदस्य है उसके पास कुल तीन बीघा जमीन, एक जोड़ा बैल, कुछ बाँस की कोठियाँ तथा एक कच्चा घर है। उसका पूरा जीवन प्राण धारण किये रहने की सीमान्त रेखा पर जीता है। किसी को दोनों शाम भर पेट रोटी नसीब नहीं होती। उनके तीन लड़के बचपन में दवा-दारू के अभाव में मर चुके है। उसकी पत्नी धनिया पेट की चिन्ता के कारण छत्तीस वर्ष की अवस्था में ही बूढ़ी जान पड़ती है। स्वयं होरी का स्वास्थ्य भी चिन्ता जनक है उसे घी, दूध मयस्सर नहीं होता। उसका बेटा गोबर दूध के लिए तरस कर रह जाता है। वह समय पर लगान भी नहीं चुका पाता है। कर्ज से लदा हुआ है पैसे के अभाव में वह गोबर तथा रूपा का ब्याह भी नहीं कर पा रहा है। जाड़े के दिनों में तार-तार हुए कम्बल और फटी हुई मिर्जई के सहारे रात काटता है। पत्नी धनिया और बेटी सोना की साड़ियाँ 'कथरी' हो गयी है। जब गोबर झुनिया को रातो रात भगा ले जाता है तो उसके ऊपर गाँव के सारे पंच नराज हो जाते है और उस पर दण्ड लगाते हैं। पंचायत का दण्ड चुकाने के बाद होरी की अवस्था कितनी दयनीय हो जाती है। इसका पता निम्न पंक्तियों से चलता है—

बैशाख तो किसी तरह कटा, मगर जेठ लगते-लगते घर में अनाज का एक दाना न रहा। पाँच-पाँच पेट खानेवाले और घर में अनाज नदारद। दोनों जून न मिले, एक जून तो मिलना ही चाहिए। भर पेट न मिले, आधा पेट तो मिले। निराहार कोई कै दिन रह सकता है। उधार ले तो किससे ? गाँव के छोटे-बड़े महाजनों से तो मुँह चुराना पड़ता था। मजूरी भी करे, तो किसकी? जेठ में अपना ही काम ढ़ेरों था। ऊख की सिंचाई लगी हुयी थी, लेकिन खाली पेट मेहनत भी कैसे हो। एक दूसरे प्रसंग में धनिया पटेश्वरी से कहती है। आजकल हमारे ऊपर जो बीत रही है वह क्या तुमसे छिपा है। महीनों से भर पेट रोटी नसीब नहीं हुई।

होरी की महत्वाकांक्षा, एक साधारण किसान की महत्वाकांक्षा है। वह चाहता है कि उसके पास एक गाय होती। इस महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए वह आजीवन संघर्ष करता है। वह चाहता है कि उसके लड़के दूध पीये उसके द्वार की शोभा बढ़े, और गाय की सेवा करके वह पुण्य लाभ करे। होरी जैसे किसान के लिए यह महत्वाकांक्षा नहीं तो क्या है ? क्योंकि तत्कालीन परिस्थितियों में जकड़े किसान के लिए एक गाय की व्यवस्था करना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य था। होरी की महत्वाकांक्षा अपनी साधारणता में अद्वितीय है। जैसा साधारण होरी का व्यक्तित्व है वैसी ही साधारण उसकी महत्वाकांक्षा है। वह महज एक गाय प्राप्त करना चाहता है। पर इस शोषण पूर्ण समाज व्यवस्था में होरी जैसे किसान के लिए गाय ही 'दुर्लभ' वस्तु है।

होरी शब्दों में गाय मांगता भी नहीं, भोला खुद होरी को गाय देने का प्रस्ताव करता है। कुछ दिन बाद गोबर जाकर गाय ले भी आता है। गाय होरी के द्वार पर बध जाती है यह अवसर होरी और उसके परिवार के लिए अभूतपूर्ण उल्लास का है। होरी श्रद्धा विहवल नेत्रों से गाय को देख रहा है। मानो साक्षात् लक्ष्मी ने पदार्पण किया हो, वह मन ही मन कहता है आज भगवान ने यह दिन दिखाया कि उसका घर गऊ के चरणों से पवित्र हो गया। गाय होरी के लिए विपत्ति का वाहक बन जाती होरी का यह सौभाग्य शीघ्र ही भंयकर दुर्भाग्य में बदल जाता है। दो चार दिन के भीतर उसका ही भाई हीरा, गाय को जहर दे देता है। और गाय मर जाती है। इस दुर्भाग्य के आगमन में होरी का कोई दोष नहीं है। गाय का मरना होरी के लिए भंयकर दुर्भाग्य तो था ही, हीरा का जहर देना उसके लिए कम पीड़ादायक नहीं है। होरी की इस पीड़ा का अनुभव पाठक बहुत गहराई के साथ करता है। चारों ओर निरव अन्धकार छाया हुआ था। दोनों बैलों की घंटियां कभी-कभी बज उठती थी

दस कदम पर मृत गाय पड़ी थी और होरी घोर पश्चाताप में करवट बदल रहा था। अन्धकार में प्रकाश की रेखा कही नजर न आती थी।

गाय के मरने के ठीक एक दिन पहले झिंगुरी सिंह ने होरी से गाय बेच देने का प्रस्ताव किया था। अतः झिंगुरी सिंह के समझाने बुझाने पर होरी गाय बेचने को तैयार हो जाता है। पर इस प्रस्ताव से घर में इतना कुहराम मचता है और होरी को गो लालसा भी इतना जोर मारती है कि वह झिंगुरी सिंह के यहाँ गाय पहुँचा नहीं पाता और उसी रात हीरा गाय को जहर खिला देता है। होरी को इस बात की पीड़ा कचोटती है कि क्यों नहीं वह गाय झिंगुरी सिंह को दे आया। होरी की दुर्भाग्य की कहनी यही समाप्त नहीं हो जाती। सच पूछे तो यह कहानी गाय के आने के बाद शुरू होती है। गाय के मरने के बाद दरोगा अपने दल-बल के साथ घटना की तहकीकात करने पहुँचता है और दरोगा तथा गाँव के पंच मिलकर ऐसी स्थिति उत्पन्न कर देते है कि होरी को ही कर्ज लेकर दरोगा को तीस रूपये रिश्वत देने के लिए विवश होना पड़ता है। धनिया की हिम्मत से होरी रूपये देने से बच जाता है। गाय अपने साथ होरी के लिए विपत्तियों की लम्बी श्रृंखला लेकर आती है।

इसके बाद होरी के दुर्भाग्य की रात्री गहराने लगती है। उसके खेत में ईख की फसल लगी हुई है। ईख बेचकर बैल खरीदने की इच्छा उसके मन में है। पर उसके सभी महाजन झिंगुरी सिंह, नोखेराम, दुलारी सहुआइन, मगरू शाह इस फसल पर आँख लगाये हुए है। मिल के फाटक पर ही झिंगुरी सिंह अपने सूदमूल के साथ 95 रूपये वसूल कर होरी को केवल पच्चीस रूपये देते है और आगे बढ़ने पर ये पच्चीस रूपये नोखेराम को भेंट हो जाते है। होरी के पास आरती में देने के लिए ताँबे का एक पैसा भी नहीं बच पाता। ये घटनाएँ होरी को किसान से मजदूर बना देती है। वह जिन्दगी भर मजदूरी को हेय कर्म समझता रहा। मजदूर बनना किसान की मयार्दा के प्रतिकूल है और होरी के मन में यह मर्यादा की भावना कूट-कूटकर भरी हुई है पर उसका कोई वश नहीं चलता। वह बैलों की जोड़ी नहीं खरीद पाता। फलतः उसे मजदूरी करनी पड़ती है। पं. दातादीन से अब उसका सम्बन्ध पुरोहित-यजमान का नहीं, मालिक-मजदूर का हो जाता है। मजदूरी करके जीवन बिताने की कल्पना होरी के लिए मृत्यु से भी भयानक है फलतः उसे पं0 दातादीन का एक लज्जाजनक प्रस्ताव मानना पड़ता है। पं. दातादीन होरी की सबसे छोटी लड़की रूपा का विवाह चालीस वर्ष के रामसेवक के साथ करने का प्रस्ताव करते है। पं० दातादीन रामसेवक से दो सौ रूपये लेकर होरी को देते हैं। तो होरी का हाथ कांप

रहा है, उसका मस्तक झुक गया है, मुँह से एक शब्द नहीं निकलता, मानों वह अपमान के अथाह गड्ढे में गिर पड़ा हो और गिरता चला जाता है। रूपा के विवाह में दो दिनों तक खूब धूमधाम रहता है पर होरी घर से बाहर नहीं निकलता मानों उसके मुँह पर कालिख लगी हो। रूपा भी अपने ससुराल में प्रसन्न है। इस कारण होरी भी खुश है। इसी बीच उसके मन के अनुकूल एक और घटना घटती है। उसका घर से भागा हुआ भाई हीरा वापस आ जाता है और सामने पड़ते ही दौड़कर उसके पैरों पर गिर जाता है। होरी उसे उठाकर छाती से लगा लेता है।

होरी को अन्तिम समय में अपनी सभी चिरसंचित अभिलाषाओं में से एक गाय की अभिलाषा पुनः प्रबल हो उठती है। इस बार वह अपने पोते मंगल के लिए गाय लेना जरूरी समझता है। इसके लिए रूपये जुटाना बहुत जरूरी है। होरी अपनी उम्र की परवाह न कर आठ आने प्रतिदिन की मजदूरी पर कंकड़ की खुदाई में जुट जाता है। दिन भर धूप और लू में काम करने के बाद वह बिल्कुल बेजान सा घर लौटता है, पर उसके मन में अवसाद की छाया तक न रहती है। उसी उल्लास में दूसरे दिन भी काम करने जाता है। रात को भी खाना खाकर दिया के सामने बैठ जाता है और सुतली काटता है। कहीं बारह, एक बजे सोता है, पर यह क्रम दो-चार दिन ही चल पाता है। एक दिन खुदाई करते समय उसे लू लग जाती है। और वह अपनी समस्त अतृप्त अभिलाषाओं को लिए संसार से प्रस्थान कर जाता है। न वह गाय ले पाता है, न रामसेवक का कर्ज ही चुका पाता है इस प्रकार देखते-देखते होरी का सुख और उल्लास जलते तवे पर पड़ी बूँदों की तरह भाप बन कर उड़ जाता है।

होरी गाय की अभिलाषा लिए मरता है, मरते समय उसकी आँखों, से आँसू बह रहे हैं जो उसकी निराशा और पराजय की अभिव्यक्ति है। गाय की अभिलाषा ही होरी के जिन्दगी को नरक में बदल देती है। वह सब कुछ करके हार जाता है। पर अपनी गाय की इच्छा पूरी नहीं कर पाता। किन्तु मृत्यु के बाद बैतरणी पार करने के लिए उसे गाय जरूर मिलनी चाहिए सब लोग धनिया को होरी के हाथ से गोदान करा देने की सलाह देते हैं। धनिया मरते हुए होरी के हाथ से वास्तविक गोदान भी नहीं करा पाती। होरी के हाथ से सवा रूपये का गोदान कराया जाता है। और मान लिया जाता है कि बैतरणी पार करते समय होरी को गाय जरूर मिल जायेगी। समाज की रूढ़ मान्यताओं पर उपन्यासकार का व्यंग्य स्पष्ट है।

इस प्रकार 'गोदान' में शोषण चक्र में पिसते हुए छोटे किसानों के दयनीय जीवन का चित्रण है। यह एक साधारण किसान की अपने जीवन की पल-पल पर शोषण से जुझते हुए तथा अन्त में अपनी छोटी सी महत्त्वाकांक्षा के साथ ही मर जाने की करूण गाथा है। होरी जैसे किसान अपने जीवन संग्राम में पल-पल पर पराजित होता हुआ मर जाता है।

प्रेमचन्द का लेखक व्यक्तित्व भारतीय ग्रामीण जीवन से जुड़ता है।भारतीय किसान जीवन का यदि वास्तविक साक्षात्कार करना है तो 'गोदान' इसके लिए पुष्ट प्रमाण दे सकता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि गोदान में ग्रामीण जीवन और कृषि संस्कृति का प्रतिनिधित्व और सर्वथा विश्वसनीय चित्रण हुआ है। गोदान ग्रामीण समाज की महागाथा प्रस्तुत करने वाला अद्वितीय उपन्यास है, जिसमें कृषक समाज के अभाव और आंसुओं की दर्द भरी पुकार के साथ उसकी सम्पूर्ण सांस्कृतिक विरासत को अभिव्यक्ति मिली है।